4107
C. NO - 4107

अलंकार-प्रकाश

3'9
L.

डा० वीरेन्द्र कुमार वर्मा

भारतीय विद्या प्रकाशन
वाराणसी—१

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३०९
८

लेखक :—
डा० वीरेन्द्रकुमार वर्मा
रीडर, संस्कृत तथा पालि विभाग,
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रकाशक
भारतीय विद्या प्रकाशन
कचौड़ीगली, पो० नं० १०८,
वाराणसी ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दो शब्द

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के बी० ए० द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम में ३० अलंकार निर्धारित हैं जिन्हें पढ़ाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। यद्यपि प्रत्येक अलंकार का लक्षण और उदाहरण ब्लैक बोर्ड पर लिख-लिख कर मैंने अलंकारों को समझाने का घोर प्रयत्न किया परन्तु मुझे अपने पढ़ाने से संतोष नहीं हुआ क्योंकि छात्र मेरे परिश्रम का पूरा-पूरा लाभ न उठा सके। कक्षा में सब छात्रों ने बार-बार पूछने पर यही उत्तर दिया कि वे अलंकार भली-भाँति समझ गए हैं परन्तु जब जाँच के लिए उनसे प्रश्न किए गए तब उनकी हालत देखकर मुझे तरस आता था। इसके कारणों पर विचार करने पर मेरी समझ में आया कि छात्रों को विषय का पूर्ण ज्ञान तभी हो सकता है जब उनके पास आधार के रूप में कोई पुस्तक भी हो। बाजार में कई बार ढूँढने पर भी ऐसी कोई पुस्तक नजर में नहीं पड़ी जिसे पढ़कर छात्र लाभान्वित हो सकें। इन्हीं सब बातों के परिणामस्वरूप 'अलंकार—प्रकाश' प्रकाश में आया है। इन ३० अलंकारों के अतिरिक्त इसमें ५ अलंकार और जोड़ दिये गये हैं जिससे काशी विद्यापीठ की शास्त्री कक्षा एवं वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय की मध्यमा परीक्षा के छात्र भी इसका उपयोग कर सकें।

इस पुस्तक में मम्मट के 'काव्य-प्रकाश' और विश्वनाथ कविराज के 'साहित्य-दर्पण' से लक्षण प्रस्तुत किये गये हैं। पाठक को परीक्षा की दृष्टि से किसी एक के लक्षणों का अध्ययन कर लेना चाहिये। इसके अतिरिक्त यह पुस्तक उन सभी के लिए उपयोगी होगी जो अलंकारों का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। अन्त में कतिपय अलंकारों में जो भेद बतलाया गया है वह अत्यन्त उपयोगी होगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक की सहायता से छात्र सरलता से अलंकारों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

—लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय-सूची

—:o:—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अलंकार प्रकाश

शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥ सा० द० ॥

शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म जो शोभा को बढ़ाते हैं, तथा जो रस आदि के उपकारक होते हैं, वे अलंकार कहलाते हैं। जिस प्रकार सोने-चाँदी के आभूषण शरीर की शोभा को बढ़ाते हैं, उसी प्रकार ये अलंकार भी काव्य के शोभावर्धक तत्त्व हैं। परन्तु गुणों की भाँति अलंकार काव्य के लिए अत्यन्त आवश्यक नहीं हैं। यदि काव्य रसमय है तो वह अलंकार के न होने पर भी काव्य ही रहेगा। अलंकार की व्युत्पत्ति यह है 'अलंकरोतीति अलंकारः।' अलंकार तीन प्रकार के होते हैं (१) शब्दालंकार, (२) अर्थालंकार और (३) उभयालंकार। शब्दालंकार में चमत्कार शब्द पर आधृत रहता है। जिस शब्द पर अलंकार आधृत है यदि उसे हटाकर उसका पर्यायवाची शब्द वहाँ रख दिया जाय तो वह अलंकार ही वहाँ नहीं रहेगा। अनुप्रासादि शब्दालंकार हैं। अर्थालंकार में चमत्कार अर्थ पर आधृत रहता है; शब्दों के बदल देने पर भी अलंकार की हानि नही होतीं। उपमादि अर्थालंकार हैं। जहाँ पर चमत्कार शब्द और अर्थ दोनों पर आधृत हो वह उभयालंकार कहलाता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शब्दालंकाराः

अनुप्रासः

लक्षणम्—'वर्णसाम्यमनुप्रासः'।[१]
छेकवृत्तिगतो द्विधा

छेकानुप्रासः

ल०—'सोऽनेकस्य सकृत्पूर्वः।'[२]
उदाहरणम्—'ततोऽरुणपरिस्पन्दमन्दीकृतवपुः शशी।
दध्रे कामपरिक्षामकामिनीगण्डपाण्डुताम्॥'

व्याख्या—वर्णों अर्थात् व्यंजनों के सादृश्य को 'अनुप्रास' कहते हैं। रस, भावादि के अनुगत प्रकृष्ट न्यास को अनुप्रास कहते हैं। रस भावादि के अनुकूल प्रकृष्ट रचना का नाम अनुप्रास है। रस के प्रतिकूल वर्णों की समता को अनुप्रास अलंकार नहीं माना जा सकता। केवल स्वरों की समानता में विचित्रता नहीं होती। व्यंजनों की समता के समान चमत्कार उसमें नहीं होता। स्वरों की समानता हो, चाहे न हो, परन्तु अनेक समान व्यंजन जहाँ मिल जायें वहाँ 'अनुप्रास' अलंकार होता है।

वर्णानुप्रास दो प्रकार का है—छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास।

अनेक (एक से अधिक) व्यंजनों का सकृत् (एक बार) जो सादृश्य है वह छेकानुप्रास है। जैसे यहाँ—

१—'अनुप्रासः शब्दसाम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्।' (साहित्यदर्पण)

स्वर की विषमता रहने पर भी समान शब्द (पद, पदांश) हो तो अनुप्रास अलंकार होता है।

२—'छेको व्यञ्जनसंघस्य सकृत्साम्यमनेकधा।' (सा० द०)

व्यञ्जनों के समुदाय की एक ही बार अनेक प्रकार की (स्वरूप और क्रम दोनों तरह की) समानता होने पर छेकानुप्रास होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'इसके पश्चात् अरुण (सूर्य-सारथि) के कुछ चलने से मन्द-कान्ति चन्द्र ने काम से क्षीण किसी कामिनी के कपोल की भाँति शुभ्रता धारण कर ली।'

यहाँ पर 'परिस्पन्दमन्दीकृत' में न् और द् तथा 'गण्डपाण्डुताम्' में ण् और ड् व्यंजनों का एक बार सादृश्य है। अतः यहाँ छेकानुप्रास स्पष्ट है।

वृत्त्यनुप्रासः

ल०—'एकस्याप्यसकृत्परः।'[1]

उ०—'अपसारय घनसारं कुरु हारं दूर एव किं कमलैः।
अलमलमालि मृणालैरिति वदति दिवानिशं बाला॥'

व्याख्या—एक या अनेक व्यंजनों का एक से अधिक बार सादृश्य वृत्त्यनुप्रास कहलाता है। जैसे—

'हे सखि, कपूर दूर करो, हार दूर ले जाओ, कमलों का क्या काम, मृणालों की क्या आवश्यकता' वह बाला रातदिन यही कहा करती है।

यहाँ पर रेफ और लकार का बहुत वार सादृश्य है। अतः यह वृत्त्यनुप्रास हुआ।

१—'अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद् वाप्यनेकधा।
एकस्य सकृदप्येष वृत्त्यनुप्रास उच्यते॥' सा० द०

जहाँ अनेक व्यञ्जनों की एक ही प्रकार से (केवल स्वरूप से, क्रम से नहीं) समानता हो, या जहाँ अनेक व्यञ्जनों की अनेक वार आवृत्ति हो, या एक ही वर्ण की एक ही वार समानता हो या एक ही वर्ग की अनेक वार आवृत्ति ह वहाँ वृत्यनुप्रास अलंकार होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लाटानुप्रासः

ल०—'शाब्दस्तु लाटानुप्रासो भेदे तात्पर्यमात्रतः ॥'[१]

पदानां सः

'यस्य न सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य ।
यस्य च सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य ॥'

पदस्यापि

'वदनं वरवर्णिन्यास्तस्याः सत्यं सुधाकरः ।
सुधाकरः क्व नु पुनः कलंकविकलो भवेत् ॥'

व्याख्या—वर्णानुप्रास के दो प्रकारों का निरूपण करने के बाद अब शब्दानुप्रास का लक्षण करते हैं। इस लाटानुप्रास में समान अर्थ वाले परन्तु भिन्न तात्पर्य वाले शब्दों का सादृश्य रहता है। तात्पर्यभेद का अर्थ है अन्वय-भेद। लाटानुप्रास के लिए यह आवश्यक है कि सार्थक शब्दों की ही आवृत्ति हो, निरर्थक शब्दों की नहीं। लाट देश के लोगों का प्रिय होने से यह लाटानु-प्रास कहा जाता है। कुछ लोग इसको पदानुप्रास भी कहते हैं।

यह लाटानुप्रास एक से अधिक पदों की आवृत्ति में भी होता है। जैसे—

'जिसके समीप में उसकी कान्ता नहीं है, उसके लिए चन्द्रमा (तुहिन-दीधिति) भी दावानल है और जिसके समीप उसकी कान्ता है उसके लिए दावानल भी चन्द्रमा है।'

यहाँ अनेक पदों की आवृत्ति है। पूर्वार्द्ध में तुहिन-दीधिति (चन्द्रमा) उद्देश्य और दवदहन विधेय हैं परन्तु उत्तरार्द्ध में तुहिनदीधिति विधेय हो जाता है और दवदहन उद्देश्य। इस प्रकार यहां उद्देश्य और विधेय का परस्पर परिवर्तन हो जाता है और यह अन्वयभेद ही तात्पर्यभेद हो जाता है।

यह लाटानुप्रास एक पद की आवृत्ति में भी होता है। जैसे :—

१—'शब्दार्थयोः पौनरुक्त्यं भेदे तात्पर्यमात्रतः ।
लाटानुप्रासः इत्युक्त ।' सा० द०

केवल तात्पर्य का भेद होने पर जहाँ शब्द और अर्थ दोनों की आवृत्ति हो उसे लाटानुप्रास कहते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'उस उत्तम स्त्री का मुख निश्चित ही सुधाकर (चन्द्रमा) है। परन्तु सुधाकर (चन्द्रमा) कलंक से रहित कहाँ हो सकता है।'

यहाँ पर केवल एक पद 'सुधाकर' की ही आवृत्ति हुई है। यद्यपि दोनों स्थलों पर सुधाकर का अर्थ चन्द्रमा ही है किन्तु प्रथम स्थल पर सुधाकर विधेय है और द्वितीय स्थल पर उद्देश्य है। इसलिए यहाँ पर तात्पर्यभेद (अन्वयभेद) है। अतः यह एक पदगत लाटानुप्रास हुआ।

यमकम्

ल०—'अर्थे सत्यर्थभिन्नानां वर्णानां सा पुनः श्रुतिः॥'

उ०— 'अनन्तमहिमव्याप्तविश्वां वेधा न वेद याम्।
या च मातेव भजते प्रयते मानवे दयाम्॥'

'नवपलाश- पलाशवनं पुरः स्फुटपराग- परागत पङ्कजम्।
मृदुल-तान्त- लतान्तमलोकयत्स सुरभिं सुरभिं सुमनोभरैः॥

व्याख्या—यदि अर्थ हो तब भिन्नार्थक वर्णों की पुनः श्रुति को यमक कहते हैं। यमक अलंकार में जिस वर्णसमूह की आवृत्ति होती है यदि वह दोनों स्थलों पर सार्थक है तो यह आवश्यक है कि दोनों स्थलों पर उस आवृत्त वर्णसमूह का भिन्न-भिन्न अर्थ होगा परन्तु यमक में यह आवश्यक नहीं कि आवृत्त अंश सार्थक ही हो, वह एक स्थल अथवा दोनों स्थलों पर भी निरर्थक हो सकता है। जैसे—'समरसमरसोऽयम्' में पहला 'समर' रूप वर्णसमुदाय तो सार्थक है। और दूसरा अर्थात् 'समरस' का भाग समर रूप वर्णसमूह निरर्थक है। इसलिये 'अर्थे सति' (अर्थ होने पर) इस कारण से कहा गया है कि जहाँ आवृत्त अंश दोनों स्थलों पर सार्थक होगा वहाँ वह भिन्नार्थक होना चाहिये, जहाँ पर एक अथवा दोनों स्थलों पर निरर्थक है वहाँ भिन्नार्थक कहने का कोई तुक नहीं है। जैसे:—

'सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते॥' सा० द०

यदि सार्थक हो तो भिन्न अर्थ वाले, स्वर-व्यञ्जन समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति को यमक कहते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'(उस दुर्गा की पदधूलि हमारे मनोरथों को सफल बनावे) जो अपनी अनन्त महिमा से सारे संसार में व्याप्त है, जिसको ब्रह्मा भी तत्त्वतः नहीं जानते और जो कि माता की तरह अपने आगे प्रणत मनुष्य पर सदा दया रखती है। इस श्लोक में द्वितीय पाद के अन्त भाग 'न वेदे याम्' की चतुर्थ पाद के अन्त भाग में आवृत्ति है। दोनों स्थलों पर आवृत्त पदों के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं।

जिसमें पलाशों (ढाकों) का वन नये पलाशों (पत्तों) से युक्त हो गया है और कमल स्फुट पराग (पुष्परज) से परागत (युक्त) हो गये हैं एवं लतान्त (लतान्तों के अन्तिम भाग) मृदुल (मुलायम) और तान्त (झुके हुए) हो गये हैं, पुष्पों के भार से सुरभि (सुगन्धित) उस सुरभि (वसन्त ऋतु) को श्रीकृष्ण ने रैवतक पर्वत पर देखा। इसमें 'पलाश पलाश' और 'सुरभि सुरभि' दोनों पद सार्थक हैं। 'लतान्त लतान्त' में पहला निरर्थक है, क्योंकि पहले 'लतान्त' का 'ल' मृदुल शब्द से मिला है। 'पराग पराग' में दूसरा 'पराग' निरर्थक है, क्योंकि इसमें अगले 'गत' शब्द का 'ग' मिलाया गया है। इस प्रकार इस श्लोक में यमक अलंकार स्पष्ट है।

श्लेषः

ल०—'श्लिष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते' (साहित्य दर्पण)

उ०—'प्रतिकूलतामुपगते हि विधौ विफलत्वमेति बहुसाधनता।
अवलम्बनाय दिनभर्तुरभून्न पतिष्यतः करसहस्रमपि॥'

'पृथुकार्त्तस्वरपात्रं भूषितनिःशेषपरिजनं देव।
विलसत्करेणुगहनं संप्रति सममावयोः सदनम्॥'

व्याख्या—श्लिष्ट पदों से अनेक अर्थों को कहने में श्लेषालंकार होता है। जैसे—

'विधि (भाग्य) या विधु (चन्द्रमा) के प्रतिकूल होने पर बहुत से उपाय भी निष्फल हो जाते हैं। गिरने (अस्त होने) के समय सूर्य के सहस्र कर (किरण या हाथ) भी उसको सहारा न दे सके। पूर्णिमा के दिन सूर्यास्तकाल में सूर्य की प्रतिकूल (पूर्व) दिशा में चन्द्रमा निकलता है। जब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हजार कर वाले सूर्य भी विधु की प्रतिकूलता होने पर गिरने से न बच सके तब विधि की प्रतिकूलता होने पर सामान्य जनों की तो बात ही क्या है। 'विधि और 'विधु' दोनों शब्दों का सप्तमी में 'विधौ' रूप बनता है। 'विधौ' पद से दोनों अर्थ निकलते हैं। अतः यहाँ श्लेषालंकार है। 'कर' का अर्थ किरण और हाथ है। अत: यहाँ भी श्लेष है।

अथवा जैसे किसी भिक्षुक की उक्ति है—

'हे महाराज ! इस समय आपका और मेरा घर एक समान हो रहा है। आप के घर में 'पृथु' = वड़े बड़े, कार्तस्वर = सोने के पात्र हैं और मेरा घर 'पृथुक' = बाल बच्चों के, 'आर्तस्वर = करुण क्रन्दन का आस्पद (स्थान) हो रहा है। आपके घर में निःशेष = सबके सब, परिजन 'भूषित' = भूषणों से सुसज्जित हैं और मेरे घर मेरे सब पुत्र-कलत्रादि भू + उषित = भूमि पर पड़े हुए हैं। आपका घर 'विलसत् = सुन्दर सुन्दर, करेणुओं = हथिनियों से भरा है और मेरा घर 'विलसत्क' = बिल में रहने वाले चूहों की, रेणु = मिट्टी से भरा है। इस पद्य में आये हुए तीन पदों का भिन्न प्रकार से समासविच्छेद करने पर भिन्न अर्थ निकलते हैं। अत: यहाँ श्लेषालंकार है।

वक्रोक्तिः

ल०—'यदुक्त्यन्यथा वाक्यमन्यथान्येन योज्यते।
श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा ॥

उ०—अहो केनेदृशी बुद्धिर्दारुणा तव निर्मिता।
त्रिगुणा श्रूयते बुद्धिर्न तु दारुमयी क्वचित् ॥
गुरुजनपरतन्त्रतया दूरतरं देशमुद्यतो गन्तुम् ॥
अलिकुलकोकिलललिते नैष्यति सखि ! सुरभिसमयेऽसौ।

व्याख्या—जहाँ किसी वक्ता के द्वारा अन्य अभिप्राय से कहा गया वाक्य

अन्यस्यान्यार्थकं वाक्यमन्यथा योजयेद्यदि।
अन्यः श्लेषेण काक्वा वा सा वक्रोक्तिस्ततो द्विधा ॥ सा० द०

जहाँ किसी के अन्य अर्थ वाले वाक्य को कोई दूसरा पुरुष श्लेष से या काकु से अन्य अर्थ में लगा दे वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रोता के द्वारा श्लेष (शब्द के दूसरे अर्थ के कारण) अथवा काकु (ध्वनि विकार) से अन्य अभिप्राय में लगा लिया जाय वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है । वक्रोक्ति दो प्रकार की होती है—(१) श्लेष वक्रोक्ति (२) काकु वक्रोक्ति । क्रमशः उदाहरण—

(वक्ता) ओह ! किसके द्वारा तुम्हारी वुद्धि ऐसी दारुण (क्रूर) बना दी गई है । (श्रोता) अरे वुद्धि सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों से वनी होती है, किसी की भी वुद्धि लकड़ी की वनी हुई नहीं होती ।'

यहाँ वक्ता ने तो 'दारुणा' शब्द को क्रूर के अर्थ में प्रयुक्त किया था परन्तु श्रोता ने उस अर्थ को समझते हुए भी अपनी बुद्धि के प्रदर्शन के लिए 'दारुणा' पद को लकड़ी के अर्थ में लगाकर उसका उत्तर दिया । अतः यहाँ श्लेष वक्रोक्ति अलंकार है ।

नायक विदेश जाने के इच्छुक हैं । उस समय नायिका और उसकी सखी का यहाँ वचन प्रतिवचन है—'गुरुजनों (माता-पिता) की पराधीनता के कारण विदेश जाने के लिए उद्यत वे भ्रमर एवं कोकिलों से रमणीय वसन्तकाल में नहीं आयेंगे ?'

नायिका ने दुःख के साथ कहा कि वे वसन्तकाल में भी नहीं आयेंगे । इस प्रकार उसने नायक के आने में निषेध का भाव प्रकट किया । उसकी सखी वाक्य को भिन्न ध्वनि से वोलती है । जिससे अर्थ निकलता है कि क्या नहीं आवेंगे अर्थात् अवश्य आवेंगे । ध्वनि-विकार से ही अर्थं कितना वदल गया । यह काकु वक्रोक्ति अलंकार का उदाहरण है ।

———

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थालंकाराः

उपमा

ल०—'साधर्म्यमुपमा भेदे।'

ल०—'स्वप्नेऽपि समरेषु त्वां विजयश्रीर्न मुञ्चति।
प्रभावप्रभवं कान्तं स्वाधीनपतिका यथा॥
'वागर्थाविव संपृक्तौ, वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे, पार्वतीपरमेश्वरौ॥'

व्याख्या—उपमान और उपमेय में भेद होने पर भी उन दोनों का एक समान धर्म (गुण, क्रिया आदि) से सम्बन्ध उपमा कहलाता है। 'भेदे' शब्द का प्रयोग उपमा को 'अनन्वय' से पृथक करने के लिए है। 'अनन्वय' अलंकार में उपमान और उपमेय में भेद नहीं होता, वे दोनों एक ही होते हैं जैसे रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।' इसमें एक ही वस्तु उपमान भी है और उपमेय भी है। इसके विपरीत उपमा में दोनों भिन्न-भिन्न होते हैं, जैसे 'कमलमिव मुखं मनोज्ञमेतत्' (मुख कमल के समान सुन्दर है)। यहाँ हम देखते हैं कि कमल और मुख का 'मनोज्ञम्' से समान संबन्ध है, दोनों ही मनोज्ञ हैं। इसलिए यहाँ उपमा है।

उपमा के अंग

उपमेय—उपमेय उस वस्तु को कहते हैं जिसकी तुलना अभीष्ट होती है और उपमेय को 'प्राकरणिक', 'प्रस्तुत', 'प्रकृत और 'विषय' आदि भी कहते हैं।

'कमलमिव मुखं मनोज्ञम्' में 'मुख' उपमेय है।

उपमान—उपमान वह वस्तु है जिससे उपमेय की तुलना की जाती है,

'साम्यं वाच्यमवैधर्म्यं, वाक्यैक्य उपमा द्वयोः।' सा० द०

एक ही वाक्य में दो वस्तुओं का अर्थात् उपमान और उपमेय का वैधर्म्य रहित और वाच्य सादृश्य उपमा कहलाता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और उपमान को 'अप्राकरणिक', 'अप्रस्तुत', 'अप्रकृत' और विषयी भी कहते हैं। उपर्युक्त वाक्य में 'कमल' उपमान है।

साधारण धर्म—जिस कारण से उपमान और उपमेय की समानता प्रतिपादित की जाती है उसे साधारण धर्म कहते हैं। जैसे उपर्युक्त वाक्य में 'मनोज्ञम्' शब्द साधारण धर्म है।

वाचक—उपमान और उपमेय की समानता जिस शब्द से प्रतिपादित की जाती है उसको वाचक कहते हैं। उपर्युक्त वाक्य में 'इव' वाचक है। 'यथा', 'इव', 'तुल्य', 'सदृश', 'सम', 'समान', 'वत्' ये मुख्य वाचक हैं।'

उपमा दो प्रकार की होती हैं—पूर्णोपमा और लुप्तोपमा।

पूर्णोपमा—उपमान, उपमेय, साधारणधर्म और वाचक इन सभी के ग्रहण होने पर पूर्णोपमा होती है। यथा—'हे राजन्! जिस प्रकार स्वाधीन-पतिका नायिका [स्वाधीनः आज्ञाकारी पतिर्यस्यास्तादृशी] अपने प्रभावप्रभव नायक [प्रभावस्य प्रकृष्टानुरागस्य प्रभवमुत्पत्तिहेतुं कान्तं कमनीयं नायकम्] को स्वप्न में भी नहीं छोड़ती, उसी प्रकार जयलक्ष्मी प्रभाव प्रभव [प्रभावस्य प्रभुत्वस्य प्रभवमुत्पत्तिहेतुम्] आपको संग्रामों में स्वप्नावस्था में भी नहीं छोड़ती।'

इसमें स्वाधीनपतिका उपमान, विजयश्री उपमेय, न मुञ्चति (अपरित्याग) साधारण धर्म और यथा उपमावाचक है। अतः इन चारों अङ्गों के होने से पूर्णोपमा हुई।

'शब्द और अर्थ के ज्ञान की सम्यक् रूप से प्राप्ति के लिए शब्द और अर्थ की तरह मिले हुए जगत् के माता-पिता पार्वती और शिव की मैं वन्दना करता हूँ।' इसमें वागर्थौ उपमान है, पार्वतीपरमेश्वरौ उपमेय है, संपृक्तौ साधारणधर्म है और इव वाचक है। यह पूर्णोपमा है।

नालम्बते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते॥

'विद्वान पुरुष न तो दैव के भरोसे रहता है और न केवल पुरुषार्थ पर ही आश्रित रहता है, किंतु वह शब्द और अर्थ दोनों की अपेक्षा करने वाले सुकवि की भाँति दैव और पुरुषार्थ दोनों की अपेक्षा (द्वयापेक्षत्व) करता है।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहाँ 'सत्कवि' उपमान 'विद्वान' उपमेय 'द्वयमपेक्षते' साधारण धर्म और इव वाचक है। यहाँ पूर्णोपमा है।

लुप्तोपमा—जहाँ उपमान, उपमेय, साधारणधर्म और वाचक इन चारों में से एक या दो या तीन का लोप होता है वह लुप्तोपमा होती है। जैसेः—

आकृष्टकरवालोऽसौ संपराये परिभ्रमन्।
प्रत्यर्थिसेनया दृष्टः कृतान्तेन समः प्रभुः॥

'तलवार खींचे हुए युद्ध-भूमि में घूमता हुआ वह राजा शत्रुओं की सेना को कृतान्त (यम) के समान दिखाई पड़ा।' यहाँ कृतान्त उपमान, राजा उपमेय, समः वाचक है। कृतान्त और राजा का साधारणधर्म 'क्रूरत्व' है परन्तु प्रसिद्ध होने के कारण यह शब्दतः ग्रहण नहीं किया गया है। 'आकृष्टकरवालत्वम्' साधरण धर्म नहीं हो सकता क्योंकि यम का आयुध करवाल नहीं दण्ड है। 'दृष्टत्वम्' साधारणधर्म नहीं हो सकता क्योंकि यम तो अतीन्द्रिय हैं, वे दिखाई नहीं देते। साधारण धर्म तो दोनों में समान रूप से संनिविष्ट होता है। साधारण धर्म के लोप होने पर यह धर्मलुप्तोपमा हुई। इसी प्रकार अन्य उदाहरण भी जानने चाहिए।

अनन्वयः

ल०—'उपमानोपमेयत्वे एकस्यैवैकवाक्यगे। अनन्वयः'

उ०—'न केवलं भाति नितान्तकान्तिर्नितम्बिनी सैव नितम्बिनीव।
यावद्विलासायुधलास्यवासास्ते तद्विलासा इव तद्विलासाः॥
'रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव'।

व्याख्या—जब एक वाक्य में एक ही वस्तु उपमान तथा उपमेय दोनों होती है तो वहाँ अनन्वय अलंकार होता है। जैसे—न केवल अत्यन्त सुन्दरी वह नितम्बिनी उस नितम्बिनी के ही समान है। अपितु काम के नृत्यस्थान उसके

उपमानोपमेयत्वमेकस्यैव त्वनन्वयः।' सा० द०

जहां एक ही वस्तु उपमान और उपमेय दोनों होती है, वह अनन्वय अलंकार होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विलास भी उसके विलासों के समान है।' यहाँ पर पूर्वार्ध में नितम्बिनी ही उपमेय है और नितम्बिनी ही उपमान है । उत्तरार्ध में 'तद्विलासाः' ही उपमेय है और 'तद्विलासाः' ही उपमान है । अतः यहाँ अनन्वय अलंकार हुआ ।

'रामरावण का युद्ध रामरावण के युद्ध के समान था' में भी अनन्वय स्पष्ट है ।

उत्प्रेक्षा

ल०—'संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य समेन यत् ।'
उ०—'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः ।'
'मुखमेणीदृशो भाति पूर्णचन्द्र इवापरः ॥'

व्याख्या—प्रकृत अर्थात् उपमेय की पर अर्थात् उपमान के रूप में संभावना की जाय तो उत्प्रेक्षालंकार होता है। इसका अर्थ यह है कि उपमेय में उपमान के तादात्म्य (एकरूपता) की सम्भावना ही उत्प्रेक्षा होती है। 'सम्भावनं चोत्कटकोटिकः सन्देह अथवा उत्कटैककोटिः संशयः संभावनम् ।' जिसमें एक कोटि उत्कृष्ट रहे उस संशय ज्ञान को सम्भावना कहते है । संशय में दो कोटियाँ (पक्ष) रहती हैं और दोनों कोटियाँ (पक्ष) समान होती हैं । जैसे अन्धकार में खम्भे को देखकर कोई सन्देह में पड़ जाता है कि यह खम्भा है या आदमी । इसमें दोनों ज्ञानों की कोटि समान है, कोई अधिक नहीं है। जिस संशय में दो कोटियों में एक कोटि उत्कट (प्रबल, निश्चितप्राय) हो जाय वही संशय सम्भावना कहलाता है । उत्प्रेक्षालंकार में उपमान की ही कोटि प्रबल रहती है और उपमेय भी ज्ञात रहता है । यह सम्भावना आहार्य अर्थात् कल्पित होती है, वास्तविक नहीं । वक्ता को यह ज्ञान होता है कि वह इसकी कल्पना कर रहा है, उसे प्रस्तुत का यथार्थज्ञान अवश्य रहता है । वह

'भवेत्संभावनोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य परात्मना ।
वाच्या प्रतीयमाना सा प्रथमं द्विविधा मता ॥'

जहाँ उपमेय में उपमान की संभावना की जाती है वहाँ उत्प्रेक्षालंकार होता है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुख को मुख समझता हुआं ही उसकी चन्द्र के रूप में सम्भावना करता है। वास्तविक सम्भावना में यह अलंकार नहीं होता। एक बात यह भी ध्यान रखने की है कि उत्प्रेक्षा उपमानोपमेयभाव अर्थात् साधर्म्य पर आधृत होना चाहिये। असदृश वस्तुओं की सम्भावना में उत्प्रेक्षालंकार नहीं होता।

उत्प्रेक्षा दो प्रकार की होती है—वाच्या और प्रतीयमाना।

जहाँ पर इव, ध्रुवम्, प्रायः नूनम्, मन्ये, शङ्के, अवैमि, ऊहे तर्कयामि, जाने, उत्प्रेक्षे इत्यादि उत्प्रेक्षा के प्रतिपादक शब्दों का प्रयोग हो वह वाच्या और जहाँ इन प्रतिपादक शब्दों के विना ही उत्प्रेक्षा हो वह प्रतीयमाना होती है। क्रमशः उदाहरणः—

मृच्छकटिक में अंधकार का वर्णन—'ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अंधकार अंगों में लेप लगा रहा है, आकाश काजल की वृष्टि कर रहा है।' इस पद्य में दो उत्प्रेक्षा हैं। यहाँ अन्धकार के प्रसाररूप प्रकृत में लेपन और वर्पणरूप अप्रस्तुत की सम्भावना की गई है। न तो अन्धकार लेपन करता है और न आकाश काजल की वर्षा करता है। यह वाच्योत्प्रेक्षा है। अथवा 'इस मृगनयनी का मुख एसे शोभायमान हो रहा है कि मानों दूसरा चन्द्रमा है।' चन्द्रमा तो एक ही होता है परन्तु इस मृगनयनी के मुख में दूसरे चन्द्रमा की सम्भावना की गई है। यह भी वाच्योत्प्रेक्षा है।

तन्वङ्ग्याः स्तनयुग्मेन मुखं न प्रकटीकृतम्।
हाराय गुणिने स्थानं न दत्तमिति लज्जया॥

'मानो इस लज्जा कि गुणी (सूत्रयुक्त) हार के लिए स्थान नहीं दिया तन्वङ्गी के स्तनयुग्म ने मुख प्रकट नहीं किया।' कठोर स्तनवाली एवं जिसको चूचुक प्रगट नहीं हुई है ऐसी युवती को देखकर यह सम्भावना की गई है। इस पद्य के अर्थ के लिए लज्जया इव (मानों लज्जा से) यह प्रतीति शीघ्र ही हो जाती है क्योंकि स्तनों में लज्जा असम्भव है। इव शब्द के बिना वाक्य का अर्थ नहीं निकलता है। परन्तु इव शब्द यहाँ वाच्य नहीं, प्रतीयमान है। अतः यहाँ प्रतीयमानोत्प्रेक्षा हुई।

———

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रूपकम्

ल०—'तद्रूपकमभेदो य उपमानोपमेययोः ।'

उ०—'ज्योत्स्नाभस्मच्छुरणधवला बिभ्रती तारकास्थी-
न्यन्तर्धानव्यसनरसिका रात्रिकापालिकीयम् ।
द्वीपाद् द्वीपं भ्रमति दधती चन्द्रमुद्राकपाले
न्यस्तं सिद्धाञ्जनपरिमलं लाञ्छनस्य च्छलेन ॥'
'यस्य रणान्तःपुरे करे कुर्वतो मण्डलाग्रलताम् ।
रससंमुख्यपि सहसा पराङ्मुखीभवति रिपुसेना ॥'

व्याख्या—उपमान और उपमेय में अभेद की प्रतीति को रूपक कहते हैं। रूपक उपमा से एक पग आगे है। उपमा में उपमेय और उपमान के साधर्म्य (सादृश्य) का कथन होता है, जैसे, 'मुख चन्द्रमा के समान है। इससे एक पग आगे बढ़कर वक्ता कह देता है, 'मुख ही चन्द्रमा है' उपमेय और उपमान का अभेद इतना बढ़ जाता है कि वे दोनों एक ही हो जाते हैं। मुख ही चन्द्रमा बन जाता है। और इस प्रकार हमें रूपक प्राप्त होता है। दोनों में अतिसाम्य होने के कारण उनमें अभेद का आरोप किया जाता है परन्तु यह बात उल्लेखनीय है कि मुख की अभिन्नता चन्द्रमा के साथ अवश्य हो जाती है, परन्तु स्थिति दोनों की रहती है। (अतिशयोक्ति में दोनों की स्थिति नहीं रहती) उपमेय और उपमान इन दोनों का वैभिन्य ज्यों का त्यों रहता है। उनके विभिन्न स्वरूपों के रहने पर भी उनमें अत्यधिक साम्य के प्रदर्शन के लिए काल्पनिक अभेद का आरोप किया जाता है वही रूपक कहलाता है। जैसे—कवि यहाँ रूपक द्वारा रात्रि का कापालिकी (योगिनी) के रूप में वर्णन करता है 'चन्द्रिका रूप भस्म के अंगलेपन से धवल बनी हुई, नक्षत्रों रूपी अस्थियों को धारण किए हुए और अन्तर्धान के व्यसन (कौतुक, क्रीडा) में तत्पर यह रात्रिरूप योगिनी, चन्द्ररूप मुद्राकपाल (दीक्षाकाल में ग्रहण किया

'रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे' । सा० द०

निषेधरहित उपमेय में जहाँ उपमान का आरोप किया गया हो वहाँ पर रूपक अलंकार होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाने वाला कापालिकों का अञ्जनादि रखने का कपाल) में कलङ्क के वहाने से सिद्धाञ्जनचूर्ण को रखे हुए द्वीप-द्वीपान्तरों में घूमती है।'

इस श्लोक में रात्रि के ऊपर कापालिकी का आरोप किया गया है। वही प्रधान रूपक है। ज्योत्स्ना पर भस्म का, तारकों पर अस्थि का, चन्द्र पर मुद्राकपाल का आरोप किया गया है। ये सब अंग रूपक हैं जो अंगि (प्रधान) रूपक के परिपोषक हैं। अथवा

'जिस राजा के रण रूप अन्तःपुर में खंगलता (रूप नायिका) को हाथ में पकड़ते ही रिपुसेना (रूप प्रतिनायिका) उत्साह से संमुख वढ़ती हुई (रतार्थम् संमुखी) भी एकदम भाग खड़ी होती है (पराङ् मुखी हो जाती हैं)।

यहाँ पर रण के ऊपर अन्तःपुर का आरोप है जो शब्द से उपात्त है। मण्डलाग्रलता (खड्गलता) के ऊपर नायिका का तथा रिपुसेना के ऊपर प्रतिनायिका का आरोप है किन्तु ये शब्द से उत्पात्त नहीं है। ऐसे रूपक को एकदेशविर्वात्ति साङ्ग रूपक कहते हैं जब कि पहला उदाहरण समस्तवस्तुविषय साङ्ग रूपक का है।

अपह्नुतिः

ल०—'प्रकृतं यन्निषिध्यान्यत् साध्यते सा त्वपह्नुतिः'

उ०—'नायं सुधांशुः किन्तर्हि व्योमगङ्गासरोरुहम्।'

'नेदं नभोमण्डलमम्बुराशिर्नैताश्च तारा, नवफेनभंगाः।
नाऽयं शशी कुण्डलितः फणीन्द्रो नाऽसौ कलङ्कः, शयितो मुरारिः॥'

व्याख्या—प्रकृत अर्थात् उपमेय को असत्य सिद्ध करके उपमान को ही सत्य रूप से जहाँ स्थापित किया जाता है वह अपह्नुति अलंकार होता है जैसे—

'प्रकृतं प्रतिषिध्यान्यस्थापनं स्यादपह्नुतिः।' सा० द०

जहाँ प्रकृत (उपमेय) का प्रतिषेध करके अन्य (उपमान) की स्थापना की जाय वह अपह्नुति अलंकार होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'यह चन्द्र नहीं है, किन्तु आकाश गङ्गा का कमल है।'

यहाँ चन्द्रमा (उपमेय, वर्णनीय) को देखकर उसका निषेध किया गया है और उसके स्थान पर आकाश गङ्गा कमल (उपमान) की स्थापना की गई है, अतः यहाँ अपह्नुति अलंकार हुआ।

यह आकाश मंडल नहीं है, किन्तु समुद्र है, ये तारे नहीं किंतु नये फेन के ठुकड़े हैं, यह चन्द्रमा नहीं, किन्तु कुण्डल मारकर बैठे हुए शेषनाग हैं, यह कलङ्क नहीं, किन्तु मुरारि सो रहे हैं।'

यहाँ प्रस्तुत नभोमण्डलादि का निषेध कर अप्रस्तुत अम्बुराशि आदि का स्थापन किया गया है। अतः यहाँ अपह्नुति है।

समासोक्तिः

ल०—'परोक्तिर्भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिः।'

उ०—'लब्ध्वा तव बाहुस्पर्शं यस्याः स कोऽप्युल्लासः।
जयलक्ष्मीस्तव विरहे न खलूज्ज्वला दुर्बला ननु सा॥'

व्याधूय यद्वसनमम्बुजलोचनाया
वक्षोजयोः कनककुम्भ-विलासभाजाः।
आलिङ्गसि प्रसभमङ्गमशेपमस्या
धन्यस्त्वमेव मलयाचलगन्धवाह॥

व्याख्या—श्लेषयुक्त भेदकों अर्थात् विशेषणों की सहायता से पर अर्थात् अप्रकृत का कथन समासोक्ति अलंकार कहलाता है। यहां पर प्रस्तुत के वर्णन द्वारा अप्रस्तुत का बोध कराया जाता है। दूसरे शब्दों में प्रकृतार्थ प्रतिपादक

'समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिंगविशेषणैः।
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः॥' सा० द०

जहाँ सम अर्थात् प्रस्तुत और अप्रस्तुत में समान रूप से अन्वित होने वाले कार्य, लिंग और विशेषणों से प्रस्तुत में अप्रस्तुत के व्यवहार का आरोप किया जाता है वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाक्य के द्वारा अप्रकृतार्थ का अभिधान ही समासोक्ति है। समासोक्ति का अर्थ है 'समासेन अर्थात् संक्षेपेण उक्तिः।' संक्षेप कहने का तात्पर्य यह है कि एक वस्तु के वर्णन के द्वारा दो अर्थों का वोध होता है। अप्रस्तुत का बोध श्लेषयुक्त विशेषणों की सहायता से होता है, क्योंकि ये विशेषण प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों से समान सम्बन्ध रखने वाले होते हैं। इस प्रकार प्रकृत अर्थ का ज्ञान अभिधा से होता है और अप्रकृतार्थ की प्रतीति व्यञ्जना के द्वारा होती है। जैसे—

'वह जयलक्ष्मी जो तुम्हारे वाहुस्पर्श को पाकर अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त करती थी, तुम्हारे वियोग हो जाने पर प्रसन्न नहीं है, अवश्य दुर्बल हो गई है।'

समरपतित अपने स्वामी को देखकर किसी वीरपत्नी की यह उक्ति है। यहाँ पर जयलक्ष्मी प्रस्तुत है और 'उल्लासः', 'उज्ज्वला' और 'दुर्वला' विशेषणों के प्रयोग से हमें किसी कान्ता का वोध हो रहा है, जो यहाँ अप्रस्तुत है। यह कान्ता भी अपने प्रेमी का वाहुस्पर्श (आलिङ्गन) पाकर अनिर्वचनीय आनन्द का अनुभव किया करती थी और अब उसके अभाव में वह आभाहीन एवं कृश हो गई है। यहाँ पर 'उल्लासः', 'उज्ज्वला' और 'दुर्वला' शब्द जयलक्ष्मी और कान्ता दोनों ही के साथ प्रयुक्त हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह श्लोक प्रकृत जयलक्ष्मी का वर्णन कर रहा है और साथ ही साथ 'उल्लासः', 'उज्ज्वला', 'दुर्वला' विशेषणों के माहात्म्य से यह व्यञ्जना द्वारा अप्रकृत कान्ता की भी प्रतीति करता है। अतएव यह समासोक्ति का उदाहरण है।

और भी 'हे मलयानिल! चूँकि तुम इस कमलनयनी के सुवर्णकलश सदृश कुचों के वस्त्र को हटाकर हठपूर्वक पूर्ण रूपेण आलिङ्गन करते हो, अतः तुम धन्य हो।'

यहाँ स्तन-वस्त्र को हटाकर आलिङ्गन करना जो प्रकृत वायु का कार्य है, वह अप्रकृत हठनायक के कार्य के समान है। इस पद्य में वायु का ही कार्य शब्दों से वर्णित है परन्तु इससे हठ कामुक के कार्य की भी प्रतीत हो रही है। अतः यहाँ समासोक्ति है।

———

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निदर्शना

'निदर्शना ।

ल०—अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः ॥'

उ०—'क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥'

'उदयति विततोर्ध्वरश्मिर-
ज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम् ।
वहति गिरिरयं विलम्बि-
घण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥'

व्याख्या—निदर्शना अलंकार वस्तुओं (वाक्यार्थ निदर्शना में वस्तुओं का अर्थ है वाक्यार्थों और पदार्थ निदर्शना में पदार्थों) के ऐसे सम्बन्ध को कहते हैं जो सरसरी नजर से देखने पर अनुपपन्न दिखाई पड़े परन्तु अन्त में वह उपमा में परिणत हो जाय । दूसरे शब्दों में, जहाँ पर वस्तुओं का सम्बन्ध परस्पर न जुटता हो और वह अपने अर्थ के वोध के लिए उपमा को कल्पना करता हो उसे निदर्शना कहते है । उपमापरिकल्पकः = अन्ततोगत्वा, उपमा = उपमानोपमेयभाव में पर्यवसान हो । जैसे—'कहाँ सूर्य से उत्पन्न होने वाला महान् वंश और कहाँ अल्पज्ञ मेरी मति । मैं मोहवश उडुप (छोटी नाव) से दुस्तर सागर पार करना चाहता हूँ ।'

यहाँ पर दो वाक्यार्थ हैं परन्तु उनमें सम्बन्ध नहीं जुड़ता । 'सूर्यवंश के वर्णन करने में मैं सागर को तैरना चाहता हूँ ।' इस तरह तो अर्थ ठीक नहीं जँचता । कालिदास रघुवंश का वर्णन करते समय यथार्थ में छोटी नाव से समुद्र पार करना नहीं चाहते । परन्तु ऐसा कहकर वे 'उडुपेन सागरतरणम्' और 'मन्मत्या सूर्यवंशवर्णनम्' में सादृश्य वतला रहे हैं ।' इस प्रकार उपमा में

'संभवन्वस्तुसंवन्धोऽसंभवन्वापि कुत्रचित् ।
यत्र विम्वानुविम्बत्वं बोधयेत् सा निदर्शना ॥' सा० द०

जहाँ वस्तुओं का परस्पर सम्वन्ध सम्भव अथवा असम्भव होकर उनके विम्बप्रतिविम्बभाव का बोधन करे वहाँ निदर्शना अलंकार होता है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर्यवसान करनेपर यह अर्थ निकलता है–'मेरी छोटी-सी बुद्धि से सूर्यवंश का वर्णन करना उडुप से सागरतरण के समान है। इस प्रकार मान लेने से दोनों वाक्यार्थों की असंबद्धार्थता समाप्त हो जाती है। इसमें वाक्यार्थ निदर्शना है। अथवा जैसे—

माघकाव्य के चतुर्थ सर्ग के रैवतक गिरि के इस वर्णन में–'जिसकी किरण-रूपी रस्सियाँ ऊपर को फैल रही हैं ऐसे सूर्य के उदित होते समय तथा चन्द्रमा के अस्त होते समय यह (रैवतक) पर्वत दोनों ओर लटकते हुए दो घण्टों से युक्त हाथी की शोभा धारण कर रहा है।'

यहाँ पदार्थ-निदर्शना है क्योंकि एक पदार्थ अर्थात् 'वारणेन्द्रलीला' दूसरे पदार्थ अर्थात् 'रैवतक' पर्वत से असंबद्ध है। यहाँ यह बात समझ में नहीं आती कि एक हाथी की लीला दूसरा पर्वत कैसे धारण करता है। पर्वत अपनी ही लीला को धारण कर सकता है, हाथी की लीला को नहीं। परन्तु इसका पर्यवसान उपमा में हो जाता है 'पर्वत हाथी की लीला के समान लीला को धारण कर रहा है।' अब वह अनुपपत्ति समाप्त हो गई।

अप्रस्तुतप्रशंसा

ल०—'अप्रस्तुतप्रशंसा या सा सैव प्रस्तुताश्रया।'

उ०—'येनास्यभ्युदितेन चन्द्र! गमितः क्लान्तिं रवौ तत्र ते
युज्येत प्रतिकर्तुमेव न पुनस्तस्यैव पादग्रहः।
क्षीणेनैतदनुष्ठितं यदि ततः किं लज्जसे नो मनाग्
अस्त्येवं जडधामता तु भवतो यद्व्योम्नि विस्फूर्जसे॥'

'आदाय वारि परितः सरितां मुखेभ्यः
किं तावदर्जितमनेन दुरर्णवेन।
क्षारीकृतं च वडवादहने हुतं च
पातालकुक्षिकुहरे विनिवेशितं च॥'

'अप्रस्तुतात्प्रस्तुतं चेद् गम्यते पञ्चधा ततः।
अप्रस्तुतप्रशंसा स्याद्॥' सा० द०

अप्रस्तुत वस्तु से जहाँ प्रस्तुत का व्यञ्जन होता है वह ५ प्रकार की अप्रस्तुत प्रशंसा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—अप्रस्तुत पदार्थ का ऐसा अभिधान (प्रशंसा) जिससे प्रस्तुत अर्थ की प्रतीति हो जाय अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार कहलाता है। अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार में अप्रस्तुत वाच्य होता है और इससे जिस प्रस्तुत की प्रतीति होती है वह व्यङ्ग्य होता है। कवि के लिये जो वर्णनीय वस्तु (प्रस्तुत) होती है वह उसका वर्णन न करके किसी अप्रस्तुत वस्तु का वर्णन करता है और इस अप्रस्तुत वस्तु के वर्णन से प्रस्तुत वस्तु व्यङ्ग्य होती है (प्रस्तुत की प्रतीति होती है) जैसे—

'हे चन्द्र ! जिस सूर्य के उदित होने से तुम आभाहीन हो जाते हो उस सूर्य से तुम्हें बदला ही लेना चाहिए था परन्तु तुम तो इसके विपरीत उसी का पादग्रह (उसी की किरणों को धारण) कर रहे हो। यदि कहते हो कि तुमने कलाहीन होने के कारण ऐसा किया तब तो तुम्हें लज्जित होना चाहिए। अब भी जो तुम गर्व के साथ आकाश में उदित हो रहे हो, यह तो तुम्हारो शीत किरणों (मूर्खता) का ही प्रभाव है।'

इस श्लोक में चन्द्रमा निश्चित रूप से अप्रस्तुत है क्योंकि इस प्रकार चन्द्रमा का वर्णन करना इस श्लोक का उद्देश्य नहीं है। यह एक ऐसे मनुष्य का वर्णन करता है जो किसी धनी के द्वारा धनादि का अपहरण कर निर्धन बना दिया गया है और यह निर्धन अब भी उससे बदला न लेकर उसके पैरों पर गिरता है और उससे सहायता स्वीकार करता है। इतना ही नहीं, इस प्रकार सहायता ग्रहण करता हुआ भी वह बड़े गर्व का अनुभव करता है जिससे उसकी महामूर्खता का पता लगता है।

कवि ऐसे पुरुष का वर्णन करना चाहता है परन्तु वह साक्षात् रूप से उसका वर्णन न कर उसके समान व्यवहार वाले अप्रस्तुत चन्द्रमा का वर्णन करता है और इस अप्रस्तुत चन्द्रमा के वर्णन से इस स्वाभिमानशून्य पुरुष का अर्थ ज्ञात हो जाता है। इस प्रकार अप्रस्तुत के कथन से प्रस्तुत की प्रतीति होने के कारण यहाँ 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलंकार हुआ। और भी—

'इस दुष्ट समुद्र ने सभी ओर से नदियों के संगमों से पानी लेकर क्या कर लिया। उसी मीठे जल को खारा कर दिया, बडवाग्नि में जला दिया और पाताल की कुक्षि के गढ़े में पहुँचा दिया।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समुद्र यहाँ स्पष्ट रूप से अप्रस्तुत है। यहाँ कोई एसा दुरीश्वर प्रस्तुत है जो दूसरों को कष्ट पहुँचा कर चारों ओर से धन एकत्र करता है और फिर उसका अपव्यय करता है। उस असत्पुरुष का वर्णन न कर उसके समान ही दुष्ट समुद्र का वर्णन किया गया है जिसके वर्णन से उस असत्पुरुष की प्रतीति हो जाती है। अतः यहाँ अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार है।

अतिशयोक्तिः

ल०—निगीर्याध्यवसानं तु प्रकृतस्य परेण यत्।
प्रस्तुतस्य यदन्यत्वं यद्यर्थोक्तौ च कल्पनम्॥
कार्यकारणयोर्यश्च पौर्वापर्यविपर्ययः ।
विज्ञेयाऽतिशयोक्तिः सा॥

उ०—पश्य नीलोत्पलद्वन्द्वान्निःसरन्ति शताः शराः।'
'कमलमनम्भसि कमले च कुवलये तानि कनकलतिकायाम्।
सा च सुकुमारसुभगेत्युत्पातपरम्परा केयम्॥'

व्याख्या—उपमान के द्वारा निगरण करके जो अध्यवसान करना है वह प्रथमातिशयोक्ति है। परेण = उपमानेन, निगीर्य = कवलीकृत्य, पृथगनिर्दिश्य; अध्यवसानम् = आहार्यभेद निश्चय। उपमेय का निगरण करते हुए (उपमेय को खाते हुए) उपमान के साथ उपमेय का जहाँ अभेदज्ञान होता है उसको अध्यव-

---

टिप्पणी—यह अलंकार वास्तव में चार विभिन्न अलंकारों का समुदाय है परन्तु इन चारों के मूल में लोकातीत उक्ति (अतिशयोक्ति) विद्यमान है अतः इनका साधारण योगरूढ़ नाम अतिशयोक्ति है। इन चारों में प्रथमातिशयोक्ति अधिक महत्त्वशाली है। यहाँ इन चारों का एक-एक करके प्रतिपादन किया गया है।

सिद्धत्वेऽध्यवसायस्यातिशयोक्तिर्निगद्यते।' सा० द०

अध्यवसाय के सिद्ध होने पर अतिशयोक्ति अलंकार होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साय कहते हैं। अध्यवसाय जहाँ पर सिद्ध हो जाय, वहाँ अतिशयोक्ति अलंकार होता है। उत्प्रेक्षालंकार में उपमेय का उपमान में अनिश्चित अभेदज्ञान होता है (मुख मानो चन्द्रमा है) अतः वहाँ पर अध्यवसान सिद्ध नहीं, अपितु साध्य है। अतिशयोक्ति में तो उपमेय में उपमान का अभेदज्ञान निश्चित है, अतः यहाँ सिद्ध है। रूपक में भी उपमेय तथा उपमान का अभेद होता है। वहाँ भी मुख ही चन्द्रमा हो जाता है। परन्तु वहाँ अभेद होने पर भी स्थिति दोनों की बनी रहती है। इससे अभेद की दिशा में एक कदम आगे बढ़ने पर उपमेय अधिक गौण हो जाता है। उपमान इतना प्रधान हो जाता है कि वह उपमेय को पूर्णतः निगल जाता है। किसी नायिका के मुखको देखकर एकदम यह कह दिया जाता है 'चन्द्रः उदेति' (चाँद निकल आया है)। यहाँ पर मुख को चाँद ने निगल लिया है। इसी दशा का नाम अतिशयोक्ति है। एक बात उल्लेखनीय है कि अतिशयोक्ति में यह अभेदज्ञान आहार्य होता है। जब उपमान के द्वारा उपमेय के निगल लेने पर उनके अभेद का ज्ञान होता है तब हमें दोनों की भिन्नता का भी पता रहता है। जब हम किसी सुन्दरी का मुख देखकर कह उठते हैं कि 'चन्द्रः उदेति' तो इसका यह अर्थ नहीं कि हम उसे वास्तव में चन्द्रमा समझ लेते हैं। यदि ऐसा हो तब तो भ्रान्तिमान् अलंकार होगा। वास्तव में हम उनकी अभिन्नता की कल्पना करते हैं। जैसे—'देखो, नील कमल के जोड़े से तीखे बाण निकल रहे हैं।' किसी नायिका के कटाक्षों का वर्णन करते हुए कोई रसिक अपने मित्र से कह रहा है कि दो नील कमलों से अर्थात् नायिका के दो नेत्रों से तीखे बाण अर्थात् तीक्ष्ण कटाक्ष निकल रहे हैं।' यहाँ पर नायिका के दो नेत्र और कटाक्ष उपमेय हैं और दो नील कमल और तीक्ष्ण बाण उपमान हैं। उपमानों ने उपमेयों को निगल लिया। उपमेयों की स्थिति ही नहीं रही और इस प्रकार उनके अभेद का ज्ञान हो गया। नीले दो कमलों से नायिका के दो नेत्रों की तथा तीक्ष्ण बाणों से कटाक्षों की प्रतीति होती है अतः यह प्रथमातिशयोक्ति का उदाहरण है। और भी—

अपनी प्रेयसी को देखकर उसकी सखी के प्रति नायक की यह उक्ति है 'बिना जल के प्रदेश में कमल (कान्तामुख) उस (मुखरूप) कमल पर दो नीले कमल (कान्ता के दो नेत्र) और वे सब सोने की लता (कान्ता के गौरवर्ण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शरीर) में (लगे हुए हैं) और वह सोने की लता (कान्ता का गौरवर्ण शरीर) सुकुमार और सुन्दर है। यह कैसी अद्‌भुत बातों की परम्परा है।'

इस पद्य में उपमानभूत कमल आदि के द्वारा उपमेयभूत कान्तामुख आदि का निगरण करके उनसे अभिन्न निश्चित किये गये हैं। इसलिए यह निगीर्याध्यवसान रूपा प्रथमातिशयोक्ति हुई।

दूसरी अतिशयोक्ति वहाँ होती है जहां प्रस्तुत वस्तु का अन्य प्रकार से वर्णन किया जाय। जिस जाति की कोई वस्तु है उसे अन्य जाति की वतलाई जाती है। ऐसा अज्ञानवश नहीं किया जाता किन्तु जान बूझ कर ऐसी कल्पना की जाती है। जैसे—नायक के प्रति नायिका के विषय में नायिका की सखी की यह उक्ति—

'अन्यत्सौकुमार्यमन्यैव च कापि वर्तनच्छाया।
श्यामा सामान्यप्रजापतेः रेखैव च न भवति॥

'उसका सौन्दर्य कुछ दूसरा ही है। उसके शरीर की कान्ति कुछ दूसरी ही है तथा वह कान्ता साधारण ब्रह्मा की रचना नहीं है।'

इस पद्य में कवि ने कान्ता के सौकुमार्य आदि का अन्य प्रकार से वर्णन किया है अतः यहाँ दूसरी अतिशयोक्ति हुई।

तीसरी अतिशयोक्ति वहाँ होती है जहाँ यदि अथवा इसके समानार्थक चेत् शब्द का प्रयोग करके एक असम्भव अर्थ की कल्पना की जाती है। जैसे—

'राकायामकलङ्कं चेदमृतांशोर्भवेद्वपुः
तस्या मुखं तदा साम्यपराभवमवाप्नुयात्॥

'पूर्णिमा की रात्रि में यदि कलङ्करहित चन्द्रमा उदित हो तव उस नायिका का मुख चन्द्रसादृश्य रूप अपमान को प्राप्त कर सकता है।

चौथी अतिशयोक्ति में कारण की शीघ्रकारिता को बतलाने के लिए कार्य का कारण से पूर्व होना वर्णित होता है। जैसे—

'हृदयमधिष्ठितमादौ मालत्याः कुसुमचापबाणेन।
चरमं रमणीवल्लभ ! लोचनविषयं त्वया भजता॥

'हे कामिनीकान्त ! कन्दर्प (कामदेव) द्वारा मालती के हृदय पर पहिले ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अधिकार कर लिया गया और बाद में देखे जाने पर उसके हृदय पर तुमने अधिकार किया ।'

वास्तव में परस्पर देखने पर ही कामदेव का प्रभाव होता है परन्तु यहाँ पर कामदेव का प्रभाव पहले हो गया और दर्शन बाद में हुआ। इसलिए कारण-कार्य के क्रम का परिवर्तन हो गया और यहाँ चौथे प्रकार की अतिशयोक्ति हुई।

प्रतिवस्तूपमा

ल०—'प्रतिवस्तूपमा तु सा ॥'
सामान्यस्य द्विरेकस्य यत्र वाक्यद्वये स्थितिः ।'

उ०—'देवीभावं गमिता परिवारपदं कथं भजत्वेषा ।
न खलु परिभोगयोग्यं दैवतरूपाङ्कितं रत्नम् ॥'

व्याख्या—जिस अलंकार में एक साधारण धर्म की दो वाक्यों में दो बार (भिन्न शब्दों से) अवस्थिति (उपादान) हो वह प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है । दो वाक्यों में एक उपमेय वाक्य होता है और दूसरा उपमान वाक्य । यदि दोनों वाक्यों में साधारण धर्म एक ही शब्द से कहा जाय तब तो कथित-पदता (पुनरुक्ति) दोष हो जायगा और काव्य तो अदोष होना चाहिए, इसीलिए एक ही साधारण धर्म को भिन्न-भिन्न शब्दों से अभिहित किया जाता है । जैसे राजा के प्रति देवी की सखी की इस उक्ति को देखिये —'देवीत्व को प्राप्त

'प्रतिवस्तूपमा सा स्याद्वाक्ययोर्गम्यसाम्ययोः ।
एकोऽपि धर्म सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक् ।' सा० द०

जिन दो वाक्यों में सादृश्य गम्य (व्यङ्ग्य; प्रतीयमान, शब्दों से अनुपात्त) होता है, उनमें यदि एक ही साधारणधर्म को भिन्न-भिन्न शब्दों से कहा जाय तो प्रतिवस्तूपमा अलंकार होता है। गम्य सादृश्य की विशेष व्याख्या के लिए देखिये—उपमा और प्रतिवस्तूपमा ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(अर्थात् पटरानी के पद को प्राप्त) यह रानी अब अन्तःपुर की सामान्य स्त्री (परिवारपद) कैसे बन जाय । देवता के रूप से चिह्नित रत्न आभूषण आदि के रूप में परिभोग के योग्य नहीं होता ।'

यहां पर पूर्वार्ध उपमेय वाक्य है और उत्तरार्ध उममान वाक्य है । उनका 'अनौचित्य' रूप साधारण धर्म पूर्वार्ध में 'कथं भजतु' पद से तथा उत्तरार्ध में 'न खलु' पद से कहा गया है। चूँकि एक ही 'अनौचित्य' रूप साधारण धर्म उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य में भिन्न-भिन्न पदों से कहा गया है इसलिए यहाँ प्रतिवस्तूपमा अलंकार है ।

दृष्टान्तः

ल०—'दृष्टान्तः पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिविम्बनम् ।'

उ०—'त्वयि दृष्ट एव तस्या निर्वाति मनो मनोभवज्वलितम् ।
आलोके हि हिमांशोर्विकसति कुसुमं कुमुद्वत्याः ॥'
'तपति तनुगात्रि ! मदनस्त्वामनिशं मां पुनर्दहत्येव ।
ग्लपयति यथा शशांङ्क न तथा कुमुद्वतीं दिवसः ॥

व्याख्या—दृष्टान्त अलंकार वहाँ होता है जहाँ (उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य इन दोनों में) इन सवका (उपमान, उपमेय और साधारण धर्म का) 'विम्ब-प्रतिविम्बभाव' हो । एक ही अर्थ का दो शब्दों से अभिधान तो कहलाता है 'वस्तुप्रतिवस्तुभाव' और दो भिन्न अर्थों का दो बार कथन होता है 'बिम्बप्रतिबिम्बभाव' । इस प्रकार दृष्टान्त अलंकार में एक ही साधारण धर्म भिन्न-भिन्न शब्दों से अभिहित नहीं किया जाता है जैसे प्रति-

---

'दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिविम्बनम् ॥' सा० द०

साधारण धर्म सहित वस्तु (उपमान उपमेयादि) का प्रतिविम्बन दृष्टान्त अलंकार कहलाता है ।

वस्तुप्रतिवस्तुभाव और बिम्बप्रतिविम्बभाव आदि के लिए देखिये—प्रति-वस्तूपमा और दृष्टान्त ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वस्तूपमा में परन्तु दो विभिन्न साधारण धर्म दो विभिन्न शब्दों से अभिहित किये जाते हैं। ये दो साधारण धर्म एक रूप नहीं होते परन्तु समान होते हैं। इसी प्रकार उपमेय और उपमान तथा उनके विशेषणादि भी समान होते हैं। इस अलंकार में वर्णनीय बात का दृष्टान्त द्वारा निश्चय किया जाता है। यथा—नायिका की सखी की नायक के प्रति उक्ति—

'तुम्हें देखते ही उस नायिका का काम से संतप्त मन शान्त हो जाता है (प्रसन्न हो जाता है) [दृष्टान्त देती है] चन्द्रमा को देखते ही कुमुदिनी का फूल खिल उठता' है।

यहाँ नृप और चन्द्र में, नायिका और कुमुदिनी में, मन और कुसुम में, मनोभवज्वलित और सूर्यकिरणज्वलित, निर्वाण और विकास में विम्बप्रतिविम्ब-भाव है, अतः यह दृष्टान्त अलंकार है।

'अभिज्ञान-शाकुन्तल' में शकुन्तला के प्रति दुष्यन्त की उक्ति 'हे कृश अङ्गों वाली! कामदेव तुम्हें तो तप्त करता है परन्तु मुझे तो भस्म कर रहा है। (दृष्टान्त देते हैं) सूर्य जितना चन्द्रमा को क्षीण करता है उतना कुमुदिनी को नहीं।' (सूर्य के उदित होने पर चन्द्रमा गायब हो जाता है किन्तु कुमुदिनी तो मुकुलित होकर ही रह जाती है)।

यहाँ पर काम और दिवस, दुष्यन्त और चन्द्रमा, शकुन्तला और कुमुदिनी, दहति और ग्लपयति में विम्बप्रतिविम्ब भाव है।

दीपकम्

ल०—'सकृद्वृत्तिस्तु धर्मस्य प्रकृताप्रकृतात्मनाम्।
सैव क्रियासु बह्वीसु कारकस्येति दीपकम्॥'

उ०—'कृपणानां धनं नागानां फणमणिः केसराः सिंहानाम्।
कुलबालिकानां स्तनाः कुतः स्पृश्यन्तेऽमृतानाम्॥'
'बलावलेपादधुनाऽपि पूर्ववत् प्रबाध्यते तेन जगज्जिगीषुणा।
सती च योषित् प्रकृतिश्च निश्चला पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि।'
स्विद्यति कूणति वेल्लति विचलति निमिषति विलोकयति तिर्यक्।
अन्तर्नन्दति चुम्बितुमिच्छति नवपरिणया वधूः शयने॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—प्रकृत [प्राकरणिक अर्थात् उपमेय] तथा अप्रकृत [अप्राकरणिक अर्थात् उपमान] के [क्रियादिरूप] धर्म का जहाँ एक ही बार उपादान [सकृद्वृत्ति] हो वहाँ पर क्रियादीपक होता है। इसमें क्रियादिरूप एक ही साधारण धर्म का अनेक कारकों के साथ संबन्ध होता है। जिस प्रकार द्वार की देहली पर रखा हुआ दीपक घर के भीतर और बाहर दोनों जगह प्रकाश करता है उसी प्रकार वाक्य में केवल एक बार ग्रहण किया गया उपमेय और उपमान का साधारण धर्म अनेक कारकों के साथ संबद्ध होकर एक जगह स्थित भी समस्त वाक्य को प्रकाशित करता है। जैसे—

कञ्जूसों के धन को, सर्पों के फण की मणि को, सिंहों के केसरों को और अच्छे कुल की बालिकाओं के स्तनों को विना उनके मरे (उनके जीवित रहते हुए) कैसे छुआ जा सकता है।'

यहाँ वर्णनीय होने के कारण कुलबालिकाओं के स्तन प्रकृत (उपमेय) हैं और कृपणों का धन, नागों की फणमणि और सिंहों के केसर ये सब अवर्णनीय होने से अप्रकृत (उपमान) है। यहाँ 'स्पृश्यन्ते' प्रकृत और अप्रकृतों का साधारण धर्म है जिसका कथन एक ही बार हुआ है परन्तु जिसका सबके साथ संबन्ध है। अतः यहाँ क्रियादीपक हुआ। अथवा—

'शिशुपालवध' में शिशुपाल की निश्चल प्रकृति का वर्णन करते हुए नारद कृष्ण से कह रहे हैं 'विजयाभिलाषी यह शिशुपाल अपने पूर्वजन्मों के अनुसार इस जन्म में भी अपने पराक्रम के अभिमान से जगत् को उत्पीड़ित कर रहा है। सच है सती स्त्री की भाँति मनुष्य की सुनिश्चल प्रकृति दूसरे जन्म में भी उसे प्राप्त होती ही है।'

यहाँ प्रस्तुत विषय निश्चल प्रकृति और अप्रस्तुतविषय सती योषित् का जन्मान्तर में भी स्वकीय पुरुष का अनुगमनरूप एक क्रिया के साथ संबन्ध वर्णित है। अतः यहाँ क्रियादीपक है।

'अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते।
अथ कारकमेकं स्यादनेकासु क्रियासु चेत् ॥' सा० द०

जहाँ अप्रस्तुत और प्रस्तुतों के साथ एक धर्म का संबन्ध हो अथवा अनेक क्रियाओं का एक ही कारक हो, वह दीपक अलंकार होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जहाँ अनेक क्रियाओं के साथ एक कारक का संबन्ध हो वह कारक दीपक अलंकार कहलाता है। जैसे—

"नवोढा वधू पति के पलङ्ग पर पसीना-पसीना हो जाती है, [पति के आलिंगन के लिए उद्यत होने पर] सिकुड़ जाती है, मुँह फेर लेती है, करवट बदल कर सोने लगती है, आँखे मीच लेती है, तिरछी आँखों से देखती है, अन्दर-अन्दर प्रसन्न होती है और चुम्बन करना चाहती है।' इस पद्य में प्रयुक्त 'स्विद्यति' आदि आठ क्रियाओं के साथ एक ही कर्ता 'वधू' संबद्ध है। अतः यहाँ कारक दीपक हुआ।

——

तुल्ययोगिता

ल०—'नियतानां सकृद्धर्मः सा पुनस्तुल्ययोगिता।'

उ०—'पाण्डुक्षामं वदनं हृदयं सरसं तवालसं च वपुः।
आवेदयति नितान्तं क्षेत्रियरोगं सखी ! हृदन्तः॥'
'कुमुदकमलनीलनीरजालिर्ललितविलासजुषोर्दृशोपुरः का।
अमृतममृतरश्मिरम्बुजन्म प्रतिहतमेकपदे तवाननस्य॥'

व्याख्या—नियतानाम् अर्थात् प्रकृत पदार्थों [वर्णनीय होने के कारण प्राकरणिक पदार्थों] या अप्रकृत पदार्थों [अप्राकरणिकों] के धर्म का जहाँ एक बार कथन किया जाय वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होता है। या तो प्राकरणिक पदार्थों का या अप्राकरणिक पदार्थों का एक साधारण धर्म के साथ संबन्ध होता है, दोनों का नहीं। क्रमशः दोनों प्रकार के उदाहरण—

'हे सखि ! तेरा पीला पड़ा हुआ कृश मुख, अनुराग से भरा हुआ हृदय और आलस्ययुक्त शरीर तेरे हृदय के असाध्य रोग को बतला रहा है।'

'पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत्।
एकधर्माभिसंबन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता॥' सा० द०

जहाँ प्रस्तुत पदार्थों के साथ एक धर्म का सम्बन्ध हो, वहाँ तुल्ययोगिता अलंकार होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विरह से पीड़ित नायिका का पाण्डु क्षाम वदन, सरस हृदय और आलस्य-युक्त वपु ये सभी वर्णनीय हैं, प्रकृत हैं। इन सब प्राकरणिक विषयों के साथ एक ही साधारणधर्म आवेदन (आवेदयति) का सम्बन्ध है जो एक ही बार उपात्त हैं। इसलिए यहाँ वह तुल्ययोगिता है जिसमें प्रकृत पदार्थों के साधारण-धर्म का एक बार कथन होता है। और—

नायिका के प्रति नायक कह रहा है 'हे कान्ते ! मनोहर चेष्टा वाली तुम्हारी आँखों के सामने कुमुद, कमल और नील नीरज क्या हैं। और तेरे मुख के सामने अमृत, चन्द्रमा और अम्बुज तो एक साथ ही हार गए हैं।'

यहाँ पूर्वार्ध में नायिका के नयन प्रकृत (प्राकरणिक, उपमेय) हैं क्योंकि कवि उन्हीं का तो वर्णन कर रहा है और जिसका वर्णन किया जाता है वहीं तो प्रकृत होता है। कुमुद, कमल और नील-नीरज अप्रकृत (उपमान हैं)जिनके साथ 'का' (क्या है) शब्द से व्यङ्ग्य तिरस्कार का समान रूप से सम्बन्ध है (अर्थात् तेरी आँखों के सामने कुमुद क्या है, कमल क्या है और नील नीरज क्या है ! आँखों के सामने सभी समान रूप से तिरस्कृत हैं)। यद्यपि 'का' का सम्बन्ध तीनों उपमानों के साथ है तथापि इसका एक ही बार कथन हुआ है। इसीलिए तो यह तुल्ययोगिता है। उत्तरार्ध में 'आनन' उपमेय है और अमृत, अमृत-रश्मि (चन्द्रमा) और अम्बुजजन्म (कमल) उपमान हैं जिनका साधारण धर्म 'प्रतिहतम्' है जो सबके साथ अन्वित है परन्तु जिसका कथन एक ही बार हुआ है। इस श्लोक में उस तुल्ययोगिता के दो उदाहरण हैं जिसमें अप्राकरणिक पदार्थों के साधारण धर्म का एक बार कथन होता है।

——

व्यतिरेकः

ल०—'उपमानाद् यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः ॥'

उ०—'अकलङ्कं मुखं तस्या न कलङ्की विधुर्यथा।'

'इयं सुनयना दासीकृततामरसश्रिया।
आननेनाकलङ्केन जयतीन्दुं कलङ्किनम् ॥

व्याख्या—जहाँ उपमान की अपेक्षा अन्य अर्थात् उपमेय का व्यतिरेक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(आधिक्य) वर्णित होता है वह व्यतिरेक अलंकार होता है। जैसे—

'उसका निष्कलङ्क मुख कलङ्की चन्द्रमा जैसा नहीं है।' यहां निष्कलङ्की मुख जो उपमेय है कलङ्की चन्द्रमा से जो उपमान है, उत्कृष्ट बतलाया गया है। उपमेय की उत्कृष्टता का कारण है निष्कलङ्कत्व और उपमान की हीनता का कारण है कलङ्कित्व। सामान्यत: चन्द्रमा मुख की अपेक्षा उत्कृष्ट होता है क्योंकि तभी तो उसे उपमान होने का सौभाग्य प्राप्त है परन्तु यहाँ तो मुख को उसकी अपेक्षा उत्कृष्ट वर्णित किया गया है। अत: यहाँ व्यतिरेक है।

इसी प्रकार—

'यह सुन्दराक्षी कमल को भी दास बना देने वाले (पराजित कर देने वाले) अपने कलंकरहित मुख से कलंकी चन्द्रमा को जीत रही है।' यहाँ पर व्यतिरेक स्पष्ट है।

आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताऽथवा ।

व्यतिरेक:.........॥'सा० द०

जहाँ उपमान से उपमेय का आधिक्य या उपमान से उपमेय की न्यूनता वर्णित हो वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है।

टिप्पणी—रुद्रट के अनुसार व्यतिरेक दो प्रकार का होता है—(१) जहाँ उपमान से उपमेय का आधिक्य वर्णित होता है, और (२) जहाँ उपमान से उपमेय की न्यूनता वर्णित होती हैं। प्रतिहारेन्दुराज, रुय्यक, विद्यानाथ, विश्वनाथ और अप्पय दीक्षित भी रुद्रट के ही मत के हैं। इसके विपरीत भामह, दण्डी, वामन, हेमचन्द्र, विद्याधर और जगन्नाथ मम्मट की ही तरह पहली प्रकार के ही व्यक्तिरेक को मानते हैं जिससे उपमान की अपेक्षा उपमेय का आधिक्य वर्णित होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विभावना

ल०—'क्रियायाः प्रतिषेधेऽपि फलव्यक्तिर्विभावना ॥'
उ०—अपमेघोदयं वर्षमदृष्टकुसुमं फलम् ।
अतर्कितोपपन्नं वो दर्शनं प्रतिभाति मे ॥'
अनायासकृशं मध्यमशंकतरले दृशौ ।
अभूषणमनोहारि वपुर्भाति मृगीदृशः ॥'

व्याख्या—कारण (क्रिया) के न होने पर भी जहाँ कार्य की उत्पत्ति का वर्णन हो वह विभावना अलंकार होता है । संसार का सामान्य नियम है कि कारण के अभाव में कार्य नहीं हो सकता, परन्तु विभावना अलंकार में इसके विपरीत कारण के विना भी कार्य का होना प्रतिपादित किया जाता है जैसे—'आपका विना तर्क के प्राप्त दर्शन विना मेघ की वृष्टि और विना कुसुम के फल के समान मुझे जाना पड़ता है ।'

यहाँ मेघोदय और कुसुमरूप कारणों के अभाव में भी वर्षा और फलरूप कार्य का होना विभावना है । अथवा जैसे—

'इस नायिका की कमर विना श्रम के ही कृश हो रही है और नेत्र विना शंका के ही चञ्चल हैं, इस मृगनयनी का शरीर आभूषण के विना ही रमणीय है' । यहाँ पर मध्य (कमर) के कृश होने में आयास, नेत्रों के तरल (चञ्चल) होने में शंका, शरीर के मनोहर होने में भूषण कारण हैं । परन्तु उनके न होने पर भी मध्य में कृशता, नेत्रों में तरलता और शरीर में मनोहरता का वर्णन किया गया है । अतः इस पद्य में कारणों के बिना ही कार्यों के होने से विभावना अलंकार है ।

'विभावना विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते ।' सा० द०

हेतु के बिना यदि कार्य की उत्पत्ति का वर्णन हो तो विभावना अलंकार होता है ।

——

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विशेषोक्तिः

ल०—विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः ।'

उ० —'निद्रानिवृत्तावुदिते द्युरत्ने सखीजने द्वारपदं पराप्ते ।
श्लथीकृताश्लेषरसे भुजंगे चचाल नालिङ्गनतोऽङ्गना सा ॥'
'कर्पूर इव दग्धोऽपि शक्तिमान् यो जने जने ।
नमोऽस्त्ववार्यवीर्याय तस्मै मकरकेतवे ॥'
स एकस्त्रीणि जयति जगन्ति कुसुमायुधः ।
हरताऽपि तनुं यस्य शंभुना न बलं हृतम् ॥'

व्याख्या—सभी प्रसिद्ध कारणों के पूर्ण रूप में विद्यमान होने पर भी जहाँ कार्य का न होना वर्णित किया जाय वह विशेषोक्ति अलंकार होता है। विशेषोक्ति तीन प्रकार की होती है—अनुक्तनिमित्ता, उक्तनिमित्ता और अचिन्त्यनिमित्ता । क्रमशः उदाहरण—

'निद्रा की निवृत्ति हो जाने पर भी, सूर्य के उदित हो जाने पर भी, सखीजन के दरवाजे पर आ जाने पर भी, उपपति के द्वारा आलिङ्गन के रस के शिथिल कर देने पर भी वह अंगना आलिंगन से न चली।' यहाँ निद्रानिवृत्ति, सूर्योदय आदि सभी कारणों के उपस्थित होने पर भी नायिका का आलिंगन-परित्याग रूप कार्य नहीं हुआ है। अतः यहाँ विशेषोक्ति है। नायिका ने आलिंगन का परित्याग क्यों नहीं किया; इसका कारण (निमित्त) नहीं बतलाया गया है अतः यह अनुक्तनिमित्ता विशेषोक्ति हुई।

'जो कामदेव कर्पूर की तरह जल जाने पर भी जन-जन में शक्तिमान है, उस अकुण्ठित शक्ति वाले कामदेव को नमस्कार है ।' यहाँ दग्ध हो जाना कारण है और शक्तिक्षय उसका कार्य। परन्तु दग्ध हो जाने पर भी शक्ति

'सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिः' सा० द०
कारण होते हुए भी कार्य का न होना विशेषोक्ति होती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्षयरूप कार्य नहीं हुआ। अतः यहाँ विशेषोक्ति है। परन्तु यहाँ उसका निमित्त 'अवार्यवीर्यत्व' दिया गया है। अतः यह हुई उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति।

'कुसुमों का आयुध धारण करने वाला कामदेव अकेला ही तीनों लोकों को जीत लेता है। शम्भु ने उसका शरीर जलाकर भी उसके बल का नाश नहीं किया।' यहाँ शरीरनाश कारण है बल के नाश का परन्तु इस कारण के होने पर भी बल का नाश नहीं हुआ। अतः यहाँ हुई विशेषोक्ति। शरीर के नाश होने पर बल के नाश न होने की बात समझ में नहीं आती। इस कारण यह अचिन्त्यनिमित्ता विशेषोक्ति है।

अर्थान्तरन्यासः

ल०—'सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा॥'

उ०—'बृहत्सहायः कार्यान्तं क्षोदीयानपि गच्छति।
संभूयाम्भोधिमभ्येति महानद्या नगापगा।'
'हनूमानब्धिमतरद् दुष्करं किं महात्मनाम्॥'
'गुणानामेव दौरात्म्याद् धुरि धुर्यो नियुज्यते।
असंजातकिणस्कन्धः सुखं स्वपिति गौर्गलिः॥,
'इत्थमाराध्यमानोऽपि क्लिश्नाति भुवनत्रयम्।
शाम्येत्प्रत्यपकारेण नोपकारेण दुर्जनः॥'
अहो हि मे बह्वपराद्धमायुषा
यदप्रियं वाच्यमिदं मयेदृशम्।
त एव धन्याः सुहृदः पराभवं
जगत्यदृष्ट्वैव हि ये क्षयं गताः॥'

व्याख्या—साधर्म्य अथवा वैधर्म्य (इतर) द्वारा, सामान्य अथवा विशेष का उससे भिन्न (अर्थात् सामान्य का विशेष के द्वारा अथवा विशेष का सामान्य के द्वारा) जो समर्थन किया जाता है वह अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। इस प्रकार यह चार प्रकार का हुआ जैसे नीचे समझाया गया है—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(१) एक सामान्य वात कही जाय और उसका समर्थन उसके समान ही (उसके समान धर्म वाली, साधर्म्येण) किसी विशेष बात से किया जाय, (२) किसी विशेष बात्त का समर्थन उसके समान धर्म वाली किसी सामान्य बात से किया जाय, (३) किसी सामान्य बात का समर्थन उससे असमान धर्मवाली (वैधर्म्येण) विशेष बात से किया जाय, (४) किसी विशेष बात का समर्थन उससे असमान धर्मवाली सामान्य बात से किया जाय। क्रमशः उदाहरण—

'बड़े लोगों की सहायता पाकर छोटा आदमी भी कार्य को पूरा कर लेता है। बड़ी नदी के साथ मिलकर छोटी पहाड़ी नदियाँ समुद्र तक पहुँच जाती हैं।' यहाँ पूर्वार्ध में एक सामान्य बात कही गई है जिसका समर्थन द्वितीयार्ध की विशेष बात से साधर्म्येण किया गया है।

हनुमान जी समुद्र को तैर गए, क्योंकि बड़े लोगों के लिए कुछ भी कठिन नहीं है।' यहाँ पर 'हनुमान जी समुद्र को तैर गए' यह विशेष वाक्य है जिसका समर्थन 'बड़े लोगों के लिए कुछ भी कठिन नहीं है' इस सामान्य वाक्य से साधर्म्येण किया गया है।

'गुणों के ही अपराध से कार्यकुशल पुरुष कार्यभार में लगाया जाता है। जुआ रखते ही बैठ जाने वाले बैल के कन्धे पर घर्षण-चिह्न भी नहीं लगता और वह आनन्द से सोता है।'

'सामान्यं वा विशेषेण विशेषस्तेन वा यदि।
कार्यं च कारणेनेदं कार्येण च समर्थ्यते।
साधर्म्येणेतरेणार्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः॥' सा० द०

जहाँ विशेष से सामान्य का, सामान्य से विशेष का, अथवा कारण से कार्य का, कार्य से कारण का साधर्म्य के द्वारा या वैधर्म्य के द्वारा समर्थन किया जाता है वहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। कारण से कार्य और कार्य से कारण के समर्थन में अधिकतर आलंकारिकों ने अर्थान्तरन्यास नहीं माना जैसा कि मम्मट के लक्षण से भी ज्ञात होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस श्लोक में एक सामान्य बात का समर्थन एक विशेष बात से वैधर्म्य द्वारा किया जाता है।

वैधर्म्य इस लिये कहा जाता है कि पूर्वार्ध में तो कार्यकुशल पुरुष का वर्णन है परन्तु उत्तरार्ध में बैठ जाने वाले बैल का। कार्यकुशल पुरुष कार्य में लगाया जाता है और बैठ जाने वाला बैल सुख से सोता है। यदि पूर्वार्ध का समर्थन साधर्म्य से करना होता तो उत्तरार्ध का स्वरूप ऐसा होता 'जैसे अच्छा बैल ही हर जगह जुएँ में जोता जाता है।' परन्तु यहाँ तो समर्थन वैधर्म्य से किया गया है।

'इस प्रकार पूजा जाता हुआ भी (वह दुष्ट तारकासुर) तीनों लोकों को क्लेश दे रहा है। दुर्जन प्रत्यपकार से शांत होता है, उपकार से नहीं।

यहाँ पूर्वार्ध की विशेष बात का समर्थन उत्तरार्ध की सामान्य बात से वैधर्म्येण किया गया है। 'वैधर्म्य' को समझने के लिए दोनों वाक्यों के अर्थों पर गौर कीजिए। पहले वाक्य में कहा गया है' इस प्रकार पूजे जाने पर भी तीनों लोकों को क्लेश दे रहा है।' इसका समर्थन साधर्म्येण इस प्रकार होता 'सच है दुर्जन उपकार करने पर भी कष्ट ही देता है।' परन्तु यहाँ तो उसी बात का समर्थन असमान बात से (भिन्न रूप से) किया गया है। पहिले वाक्य में कहा गया है 'पूजित होने पर भी कष्ट देता है' और दूसरे में 'प्रत्यपकार से शान्त होता है।' 'पूजित होने' और 'प्रपत्यकार' की तुलना कीजिए और 'कष्ट देने' और 'शान्त होने' की तुलना कीजिए। 'वैधर्म्य' कहने का यही अर्थ है। इसका एक और उदाहरण देखिए—मरे हुए मित्र को देखकर उसका समाचार देते हुए किसी के अत्यधिक खेद का वर्णन है जो अपने जीवन को धिक्कारते हुए कहता है 'मेरी दीर्घायु ने बहुत अपराध किया है जिससे मुझे ऐसी अप्रिय बात कहनी पड़ रही है। जो लोग अपने मित्र की आपत्ति को बिना देखे मर जाते हैं वे ही धन्य हैं।' यहाँ पूर्वार्ध के विशेष का उत्तरार्ध के सामान्य से वैधर्म्य से समर्थन किया गया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विरोधः

ल०—विरोधः सोऽविरोधेऽपि विरुद्धत्वेन यद्वचः ।
उ०—अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः ।
स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव ॥'
'सततं मुसलासक्ता बहुतरगृहकर्मघटनया नृपते !
द्विजपत्नीनां कठिनाः सति भवति कराः सरोजसुकुमाराः ॥

व्याख्या—जहाँ वास्तविक विरोध के न होने पर भी दो वस्तुओं का ऐसा कथन किया जाय जिससे विरोध सा प्रतीत हो वहाँ विरोधालंकार होता है। इसे ही विरोधाभास अलंकार कहते हैं। अन्त में विरोध का परिहार हो जाता है जैसे—

'तुम अजन्मा हो फिर भी जन्म ग्रहण करते हो, चेष्टाहीन होते हुए भी शत्रुओं के नाशक हो, सदा सोते रहते हो तथापि जागरूक हो । तुम्हारी यथार्थता कौन जान सकता है ? ।'

यहाँ विरोध की प्रतीति स्पष्टतः हो रही है जिसका परिहार भगवान् के अत्यधिक प्रभाव से हो जाता है। अथवा—

'हे राजन् ! सदैव मूसलों में आसक्त और घर के बहुत से कामों के करने से ब्राह्मणियों के कठोर हाथ आपके (दानी) विद्यमान होने पर कमल की तरह कोमल हो गये हैं ।'

यहाँ कठिनत्व और सुकुमारत्व में परस्पर विरोध है। परन्तु राजा के अत्यधिक दान देने से उनको काम न करना पड़ा और कुछ समय के अनन्तर उनके हाथ कोमल हो गए। इस प्रकार विरोध का परिहार हो गया।

---

१ 'विरुद्धमिव भासेत विरोधोऽसौ... ।' सा० द०

जहाँ वास्तविक विरोध न होने पर भी दो वस्तुएँ विरुद्ध सी भासित होने लगें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्वभावोक्तिः

ल०—'स्वभावोक्तिस्तु डिम्भादेः स्वक्रियारूपर्णनम् ।'

उ०—'ग्रीवाभङ्गाभिरामं मुहुरनुपतति स्यन्दने दत्तदृष्टिः
पश्चादर्धेन प्रविष्टः शरपतनभयात् भूयसा पूर्वकायम् ।
दर्भैरर्धावलीढैः श्रमविवृतमुखभ्रंशिभिः कीर्णवर्त्मा
पश्योदग्रप्लुतत्वात् वियति बहुतरं स्तोकमुर्व्यां प्रयाति ॥
'पुरः पूर्वामेव स्थगयति ततोऽन्यामपि दिशं
क्रमात्क्रामन्नद्रिद्रुमपुरविभागांस्तिरयति ।
उपेतः पीनत्वं तदनु भुवनस्येक्षणफलं
तमःसंघातोऽयं हरति हरकण्ठद्युतिहरः ॥

व्याख्या—स्वभावोक्ति वह अलंकार है जिसमें वालक (डिम्भ) आदि की अपनी स्वाभाविक क्रिया अथवा उनके रूप का वर्गन हो । स्वभाव की उक्ति का अर्थ है प्रकृतिसिद्ध उस असाधारणधर्म का कथन जो केवल उस वर्णनीय वस्तु में ही हो । रूप के अन्तर्गत रंग और अंगों की बनावट दोनों आती हैं । स्वभावोक्ति तभी अलंकार होगा जव उसमें दो बातें हो, (१) वर्णित किया जाने वाला कार्य या रूप ऐसा होना चाहिये जो साधारण जन को आसानी से प्रत्यक्ष न हो, वह केवल सहृदय कवि को ज्ञातव्य हो, (२) वह वर्णन वैचित्र्य-पूर्ण होना चाहिये। जैसे यह स्वभावोक्ति नहीं है—'गोरपत्यं बलीवर्दो घासमत्ति मुखेन सः । मूत्रं मुञ्चति शिश्नेन अपानेन तु गोमयम् ॥' क्योंकि इसमें कुछ वैचित्र्य नहीं है । यह तो सभी लोगों को ज्ञात है, फिर यह अलंकार कैसे ? स्वभावोक्ति के उदाहरण देखिये—

'स्वभावोक्तिदुरूहार्थस्वक्रियारूपवर्णनम् ।' सा० द०

दुरूह अर्थात् सामान्य जन को जानने के लिए अशक्य, केवल कवि को ज्ञातव्य जो बच्चे आदिकों की क्रियाओं या रूप का वर्णन होता है वह स्वभावोक्ति अलंकार होता है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'यह हरिण अपनी गर्दन को बार-बार मोड़कर रथ को निरन्तर निरख रहा है। बाण-संधान के भय से भयभीत हो अपने शरीर के पीछे के भाग को अग्र भाग में समेट लेता है। अत्यधिक श्रम के कारण मुख से गिरी हुई आधी खायी हुइ घासों से मार्ग व्याप्त-सा हो गया है। अरे देखो न, यह तो आकाश में उड़ रहा है, इसके पांव भूमि पर पड़ते-से नहीं लग रहे हैं।'

'शाकुन्तल' के इस श्लोक में भयभीत हरिण के भागने का कितना स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

रत्नावली में अंधकार के प्रसार का अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन देखिये—

'अंधकार पहले पूर्व दिशा को ही आच्छादित करता है, इसके बाद अन्य दिशाओं को। वह क्रम से बढ़ता हुआ पर्वत, वृक्ष, तथा पुरों (नगरों) के विभाग को भी छिपा देता है। इसके बाद हर के कण्ठ की कान्ति के समान अधिक श्यामवर्ण होकर यह घना अंधकार लोगों की पदार्थ देखने की शक्ति को ही नष्ट कर देता है।' अंधकार के प्रसार के अत्यन्त स्वाभाविक वर्णन होने के कारण यहाँ स्वभावोक्ति अलंकार है।

उदात्तम्

ल०—उदात्तं वस्तुनः संपत्। महतां चोपलक्षणम्॥'

उ०—मुक्ताः केलिविसूत्रहारगलिताः संमार्जनीभिर्हृताः
प्रातः प्रांगणसीम्नि मन्थरचलद्बालांघ्रिलाक्षारुणाः।
दूराद्दाडिमबीजशंकितधियः कर्षन्ति केलीशुकाः
यद्विद्वद्भवनेषु भोजनृपतेस्तत् त्यागलीलायितम्॥'
तदिदमरण्यं यस्मिन् दशरथवचनानुपालनव्यसनी।
निवसन् बाहुसहायश्चकार रक्षःक्षयं रामः॥'

व्याख्या—उदात्तालंकार दो प्रकार का होता है। प्रथम में वस्तु की समृद्धि का वर्णन होता है। धन, शौर्यादि जिस किसी भी वस्तु की असंभाव्यमान संपत्ति का वर्णन ही उदात्तालंकार कहलाता है। दूसरे शब्दों में जहां किसी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महासमृद्धिशाली वस्तु का वर्णन किया जाता है वहाँ उदात्तालंकार होता है। जैसे राजा भोज की स्तुति में कवि कहता है 'विद्वानों के भवनों में रति-क्रीडा के अवसर पर छिन्नसूत्र (डोरा टूट जाने के कारण) हार से गिरे हुए और झाड़ुओं से बुहारे हुए और मन्थर गति से चलती हुई षोडशवर्षीय वनिताओं के चरणों के महावर से लाल लाल दिखाई पड़ते हुए मोतियों को क्रीडार्थ पाले गए तोते जो अनार के दाने समझ कर खींच रहे हैं यह सब राजा भोज के दान की लीला है।'

यहाँ पर विद्वानों के भवनों की उत्कट समृद्धि का वर्णन होने से उदात्तालंकार है। इससे वर्णनीय राजा भोज की अतिशय समृद्धि का भी पता लगता है।

दूसरा उदात्तालंकार वहाँ होता है जहाँ किसी प्रधान वर्णनीय अर्थ में महापुरुषों का गौणरूप में (अंगरूप में) वर्णन होता है। उपलक्षणम् = अंगत्वम्। जैसे—

लंका से लौटते समय पुष्पक विमान पर बैठे हुए लक्ष्मण की अंगद के प्रति उक्ति 'यह वह वन है जिसमें रहते हुए दशरथ की आज्ञा के पालन में लगे हुए अकेले राम ने राक्षसों का नाश किया था।'

यहाँ पर दण्डकारण्य वर्णनीय है जिसके उत्कर्ष के लिए महान् राम का अंगरूप में वर्णन किया है। दण्डकारण्य इसलिए अंगी (प्रधान) है; क्योंकि वह वर्णनीय है और उसके उत्कर्ष के लिए राम साधन बनाये गए हैं अतः वे अंग (अप्रधान) हैं।

'लोकातिशयसंपत्तिवर्णनोदात्तमुच्यते।

यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्गं महतां चरितं भवेत्।' सा० द०

लोकोत्तर संपति का जहाँ वर्णन हो वह उदात्त अलंकार है। और महापुरुषों का चरित जहाँ प्रस्तुत (वर्णनीय) वस्तु का अंग हो जाय तब भी यही अलंकार होता है।

———

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भ्रान्तिमान्

ल०—'भ्रान्तिमानन्यसंवित् तत्तुल्यदर्शने ॥'

उ०—कपाले मार्जारः पय इति करान् लेढि शशिनः
तरुच्छिद्रप्रोतान् बिसमिति करी संकलयति
रतान्ते तल्पस्थान् हरति वनिताऽप्यंशुकमिति
प्रभामत्तश्चन्द्रो जगदिदमहो विप्लवयति ॥

व्याख्या—इस लक्षण में तत्=अप्राकरणिक; तत्तुल्य=अप्राकरणिक के तुल्य अर्थात् प्राकरणिक; अन्य=अप्राकरणिक; संवित्=निश्चयात्मक ज्ञान। जहाँ पर अप्राकरणिक वस्तु के समान अर्थात् प्राकरणिक वस्तु के देखने पर अन्य वस्तु (अप्राकरणिक वस्तु) का निश्चयात्मक ज्ञान हो जाय वह भ्रान्तिमान् अलंकार होता है। इस टेढे लक्षण का तात्पर्य इतना ही है कि जहाँ उपमेय (प्राकरणिक वस्तु) को गल्ती से उपमान समझ लिया जाय वह भ्रान्तिमान् अलंकार होता है। उपमेय (प्राकरणिक वस्तु) और उपमान (अप्राकरणिक वस्तु) के सादृश्य के कारण उपमेय (प्राकरणिक वस्तु) को देखकर भ्रमवश उसे उपमान (अप्राकरणिक वस्तु) समझ लिया जाय तव भ्रान्तिमान् अलंकार होता है। यहाँ यह ज्ञान जान-बूझकर (आहार्य) नहीं अपितु वास्तविक (अनाहार्य) होता है। अतिशयोक्ति में तो जान-बूझकर मुख को देखकर चन्द्रमा कहा जाता है, वहाँ भ्रम नहीं होता परन्तु भ्रान्तिमान् तो तभी होगा जब वास्तव में ही कोई मुख को चन्द्रमा समझ ले। उदाहरण—

'बड़े आश्चर्य की बात है कि अपनी कान्ति के गर्व से उन्मत्त यह चन्द्रमा संसार को भ्रम में डाल रहा है। बिडाल खप्पर में पड़ी हुई चन्द्रमा की किरणों को दूध समझकर चाट रहा है। हाथी वृक्षों के छिद्रों में से होकर पृथ्वी पर पड़ी हुई किरणों को मृणाल समझ रहा है। वनिता सम्भोग के वाद पलंग पर पड़ी हुई किरणों को अपना शुभ्रवस्त्र समझकर ग्रहण करती है।'

'साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः।' सा० द०

सादृश्य के कारण अन्य वस्तु में अन्य वस्तु के ज्ञान को—यदि वह कवि की प्रतिभा से उत्पन्न हो—भ्रान्तिमान् अलंकार कहते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहाँ प्रकृत चन्द्र की किरणों को देखने पर उनमें अप्रकृत दुग्ध आदि की भ्रान्ति हो रही है; क्योंकि उनमें सादृश्य है। अतः यहाँ भ्रान्तिमान् अलंकार स्पष्ट है।

तद्गुणः

ल०—'स्वमुत्सृज्य गुण योगादत्युज्ज्वलगुणस्य यत्।
वस्तु तद्गुणतामेति भण्यते स तु तद्गुणः ॥'

उ०—'जगाद वदनच्छद्मपद्मपर्य्यन्तपातिनः।
नयन् मधुलिहः श्वैत्यमुदग्रदशनांशुभिः ॥'

व्याख्या—जहाँ एक न्यून गुण वाली वस्तु (अपनी समीपवर्ती) अत्यन्त उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु के सम्बन्ध से अपने गुण (स्वरूप) को छोड़कर उस उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु के स्वरूप को प्राप्त कर ले, वह तद्गुण अलंकार होता है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि वह वस्तु वास्तव में ही अपने गुण को छोड़ देती है अपितु इसका यह अर्थ है कि जब न्यून गुणवाली वस्तु उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु के सम्पर्क में आती है तो उसका गुण दूसरी के गुण से इतना दब जाता है कि प्रतीत होने लगता है कि उसने अपने गुण को वास्तव में ही छोड़ दिया है। जैसे—

'मुखरूपी पद्म (कमल) के चारों ओर उड़ने वाले मधुकरों को अपने दाँतों की उज्ज्वल किरणों से शुक्ल करते हुए बलराम जी बोले।'

यहाँ मधुकरों ने अपने कृष्णवर्ण को छोड़कर शुक्लवर्ण ग्रहण किया है। अतः यहाँ तद्गुण अलंकार है।

---

१ 'तद्गुणः स्वगुणत्यागादत्युत्कृष्टगुणग्रहः' ॥ सा० द०

जहाँ कोई वस्तु अपने गुणों को छोड़कर अत्युत्कृष्ट गुणवाली वस्तु के गुण को ग्रहण कर ले, वह तद्गुण अलंकार है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अतद्गुणः

ल०—'तद्रूपाननुहारश्चेदस्य तत् स्यादतद्गुणः ॥'

उ०—गाङ्गमम्बु सितमम्बु यामुनं कज्जलाभमुभयत्र मज्जतः ।

राजहंस तव सैव शुभ्रता चीयते न च न चापचीयते ॥

व्याख्या—जहाँ पर न्यून गुणवाली वस्तु अत्युत्कृष्ट गुणवाली वस्तू के संसर्ग में आकर (प्रत्येक सम्भावना होने पर भी) उसके गुण को ग्रहण न करे, वहाँ अतद्गुण अलंकार होता है। जैसे—

'गंगा का जल शुभ्र है और यमुना का जल काला है। हे राजहंस ! तुम दोनों में स्नान करते हो परन्तु तुम्हारी शुभ्रता वैसी ही रहती है, यह न तो (गंगा में स्नान करने से) बढ़ती है और न (यमुना में स्नान करने से) घटती है।'

यहाँ प्रत्येक सम्भावना है कि राजहंस गंगा और यमुना के गुणों (रूपों) को ग्रहण करे परन्तु वह न तो गंगा के गुण (रूप) को ग्रहण करता है और न यमुना के गुण (रूप) को। अतः यहाँ अतद्गुण अलंकार स्पष्ट है।

पर्यायोक्तम्

ल०—'पर्यायोक्तं विना वाच्यवाचकत्वेन यद्वचः ।'

उ०—यं प्रेक्ष्य चिररूढापि निवासप्रीतिरुज्झिता ।

मदेनैरावणमुखे मानेन हृदये हरेः ॥'

व्याख्या—जहाँ वाच्यार्थ का प्रतिपादन वाच्यवाचकभाव के बिना (व्यञ्जनाव्यापार के द्वारा) किया जाय वह पर्यायोक्त अलंकार होता है। वक्ता को किसी भाव को प्रगट करना है। यदि वक्ता उन शब्दों का प्रयोग नहीं करता जो इस भाव को साक्षात् रूप से अभिधा द्वारा प्रगट करें परन्तू इनके

'तद्रूपाननुहारस्तु हेतौ सत्यप्यतद्गुणः ।' सा० द०

कारण होने पर भी जब न्यून गुणवाली वस्तु अत्युकृष्ट गुणवाली वस्तु के रूप को ग्रहण न करे तो अतद्गुण अलंकार होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थान पर ऐसे शब्दों का प्रयोग करता है जो इस भाव को असाक्षात् रूप से व्यञ्जना व्यापार के द्वारा प्रगट करें, तब हमें पर्यायोक्त की प्राप्ति होती है। पर्यायोक्त अलंकार तभी होगा जब ये वाच्यार्थ और व्यङ्ग्यार्थ वस्तुतः अभिन्न हों। हम इसे एक उदाहरण से समझें। हम किसी को अपने घर आने के लिए कहना चाहते हैं। इसको कहने के लिए इन शब्दों का प्रयोग नहीं करते 'भवद्भिः अस्मद्गृहे आगन्तव्यम्' जो हमारे अभिप्राय को साक्षात् रूप से अभिधा द्वारा (वाच्यवाचकभाव द्वारा) प्रगट कर देते। इस पद्धति को छोड़कर हम एक दूसरी असाक्षात् पद्धति को अपनाते हैं और इन शब्दों का प्रयोग करते हैं 'भवद्भिः निजचरणधूलिना अस्मद्गृहं पावनीयम्'। 'भवद्भि'''' पावनीयम्' हमारे अभिप्राय को वाच्यवाचकभाव के द्वारा नहीं प्रकट करता। हमारे अभिप्राय को प्रकट करने के लिये इसे व्यञ्जना व्यापार का सहारा लेना पड़ता है। 'भवद्भिः अस्मद् गृहे आगन्तव्यम्' और भवद्भिः निजचरणधूलिना अस्मद्गृहं पावनीयम्' में केवल कहने के ढंग में अन्तर है, अर्थ तो दोनों का एक ही है। इस प्रकार पर्यायोक्त अलंकार वहाँ होगा जहाँ हम किसी को अपने घर आने के लिए कहने के लिए 'भवद्भिः निजचरणधूलिना अस्मद्गृहं पावनीयम्' का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार जहाँ एक सामान्य बात को घुमा-फिरा कर कहा जाता है वहाँ पर्यायोक्त अलंकार होता है। जैसे-

'जिस (हयग्रीव) को देखकर मद ने ऐरावत के मुख पर और मान ने इन्द्र (हरि) के हृदय में निवास करने की पुरानी प्रीति को छोड़ दिया।'

यहां यह बात कहनी थी कि ऐरावत और इन्द्र क्रमशः मद और मान से मुक्त हो गए परन्तु इसको सीधा न कह कर घुमा फिरा कर इस प्रकार कहा गया है कि मद ने ऐरावत के मुख में और मान ने इन्द्र के हृदय में रहने की पुरानी प्रीति को छोड़ दिया। इस प्रकार यहां पर्यायोक्त अलंकार हुआ।

---

१ 'पर्यायोक्तं यदा भंङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते ॥ सा० द०

यदि प्रकारान्तर से व्यंग्यार्थ (गम्य) को ही अभिधा से कह दिया जाय तो पर्यायोक्त अलंकार होता है।

अर्थश्लेषः

ल०—'श्लेषः स वाक्ये एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेत् ॥'

उ०—'प्रवर्तयन्क्रियाः साध्वीर्मालिन्यं हरितां हरन्।

महसा भूयसा दीप्तो विराजति विभाकरः ॥'

व्याख्या—एक ही अर्थ के प्रतिपादक शब्दों के द्वारा जहाँ अनेक अर्थ हों वहाँ अर्थश्लेष होता है। जैसे—

सूर्य पक्ष में—'लोगों को अच्छे काम-काजों में लगाते हुए, दिशाओं के अन्धकार को हटाते हुए, अपने तीव्र प्रकाश से चमकते हुए भगवान् भास्कर विराजमान हैं।'

राज पक्ष में 'लोगों को अग्निहोत्रादि धार्मिक क्रियाओं में लगाते हुए, दिशाओं में पापाचरण को समाप्त करते हुए अथवा प्रजाजन के दुःखदारिद्र्य और कुवेषत्व को दूर करते हुए, अपने अत्यधिक राज तेज से विभूषित ये विभाकर नामक महाराज विराजमान हो रहे हैं।'

यहाँ ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो स्वभाव से एकार्थक हैं, परन्तु जो परिस्थितिवश सूर्य और राजा दोनों की ओर लगकर दो अर्थ दे रहे हैं। यहाँ प्रकरणादि का भी नियन्त्रण नहीं है। अतः यहाँ अर्थश्लेष अलंकार है। यदि प्रकरणादि से इस श्लोक का अर्थ एक ही ओर सीमित हो जाय तब दोनों अर्थ वाच्य न होकर उनमें से एक व्यङ्ग्य हो जायगा और तब अर्थश्लेष न होगा, परन्तु अभिधामूला व्यञ्जना हो जायगी। परन्तु यहाँ तो दोनों अर्थ वाच्य हैं और इस प्रकार यह अर्थश्लेष का उदाहरण है।

---

१ 'शब्दैः स्वभावादेकार्थैः श्लेषोऽनेकार्थवाचनम्।' सा० द०

स्वभाव से एकार्थक शब्दों के द्वारा अनेक अर्थों के कथन को अर्थश्लेष कहते हैं।

विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—शब्दश्लेष और अर्थश्लेष

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्याजस्तुतिः

ल०—'व्याजस्तुतिर्मुखे निन्दा स्तुतिर्वा रूढिरन्यथा ।'

उ०—हित्वा त्वामुपरोधवन्ध्यमनसां मन्ये न मौलिः परो
लज्जावर्जनमन्तरेण न रमामन्यत्र संदृश्यते ।
यस्त्यागं तनुतेतरां मुखशतैरेत्याश्रितायाः श्रियः
प्राप्य त्यागकृतावमाननमपि त्वय्येव यस्याः स्थितिः ॥'
'हे हेलाजितबोधिसत्त्व वचसां किं विस्तरैस्तोयधे
नास्ति त्वत्सदृशः परः परहिताधाने गृहीतव्रतः ।
तृष्यत्पान्थजनोपकारघटनावैमुख्यलब्धायशो--
भारप्रोद्वहने करोषि कृपया साहायकं यन्मरोः ॥'

व्याख्या—मुखे = आपाततः देखने से, पहले पहल सरसरी निगाह से देखने पर, रूढि = पर्यवसान ।

व्याजस्तुति अलंकार वहाँ होता है जहाँ पहले पहल आपाततः देखने पर किसी वस्तु की निन्दा दिखाई पड़े परन्तु उसका पर्यवसान हो उसकी स्तुति में अथवा आपाततः देखने से किसी वस्तु की स्तुति दिखाई पड़े और पर्यवसान हो उस वस्तु की निन्दा में । इस प्रकार व्याजस्तुति दो प्रकार की हुई (१) यत्र मुखे निन्दा तत्र स्तुतौ पर्यवसानम् (स्तुति में पर्यवसान होने वाली निन्दा) (२) यत्र मुखे स्तुतिस्तत्र निन्दायां पर्यवसानम् (निन्दा में पर्यवसान होने वाली स्तुति) । क्रमशः उदाहरण—

'हे राजन् ! मुझे तो ऐसा लगता है कि आश्रितों की प्रार्थना को अस्वीकार करने में आपसे बढ़-चढ़कर कोई नहीं है और लक्ष्मी से बढ़कर कोई निर्लज्ज नहीं है; क्योंकि आप तो सैकड़ों मार्गों से आकर (आपका) आश्रय

'उक्ता व्याजस्तुतिः पुनः···
निन्दास्तुतिभ्यां वाच्याभ्यां गम्यत्वे स्तुतिनिन्दयोः ।'

जब वाच्य निन्दा के द्वारा स्तुति व्यंग्य हो या जब वाच्य स्तुति के द्वारा निन्दा व्यंग्य हो, तब व्याजस्तुति अलंकार होता है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेनेवाली लक्ष्मी का अत्यधिक त्याग कर देते हैं और लक्ष्मी परित्याग से उत्पन्न अपमान को सहन करके भी आपके पास ही रहती है।'

यहाँ पर आपाततः देखने पर राजा की निन्दा की जा रही है कि वे आश्रितों का त्याग व अपमान करते हैं, किन्तु वास्तव में उन्हें महादानी और अत्यधिक समृद्धवान् कहकर उनकी स्तुति की गई है। अतः यहाँ स्तुतिपर्यवसायिनी व्याजस्तुति है।

'अनायास ही अतिकारुणिक वुद्ध भगवान् को जीत लेने वाले समुद्रदेव ! अधिक कहने से क्या, बस इतना ही कहना है कि आपसे वढ़कर परोपकार का व्रत लेने वाला कोई दूसरा दिखाई नहीं पड़ता है। क्योंकि प्यासे पथिक जनों को जल देकर उपकार करने में वैमुख्य के कारण मरुस्थल को मिले हुए अत्यधिक अपयश के भार के ढोने में आप उसकी सहायता करते हो।' (मरुस्थल को अत्यधिक अपयश मिला; क्योंकि वह प्यासे पथिक जनों को जल नहीं देता है। समुद्र ने मरुस्थल पर दया की और इसने भी अपने जल को पीने के अयोग्य बना दिया जिससे मरुस्थल के अपयश में से कुछ अपयश समुद्र को मिल गया और इस प्रकार मरुस्थल का कुछ भार हल्का हो गया)।

यहाँ आपाततः देखने पर समुद्र की स्तुति की गई है कि उसने मरुस्थल की बड़ी सहायता की है परन्तु स्तुति के वहाने से समुद्र की, खारे और पीने के अयोग्य जल के कारण, निन्दा की गई है। अतः यह हुई निन्दापर्यवसायिनी व्याजस्तुति।

काव्यलिङ्गम्

ल०—'काव्यलिङ्गं हेतोर्वाक्यपदार्थता ॥'

उ०—'जितोऽसि मन्द कन्दर्प ! मच्चित्तेऽस्ति त्रिलोचनः ॥'

'यत्त्वन्नेत्रसमानकान्ति सलिले मग्नं तदिन्दीवरं
मेघैरन्तरितः प्रिये तव मुखच्छायानुकारी शशी।
येऽपि त्वद्गमनानुसारिगतयस्ते राजहंसा गता-
स्त्वत्सादृश्यविनोदमात्रमपि मे दैवेन न क्षम्यते ॥'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'त्वद्वाजिराजिनिर्धूतधूलीपटलपङ्किलाम् ।
न धत्ते शिरसा गङ्गां भूरिभारभियाहरः ।

व्याख्या—जहाँ वाक्यार्थ या पदार्थ को किसी का हेतु कहा गया हो उसे काव्यलिंग कहते हैं । इसमें स्वतः अनुपपद्यमान प्रतीत होने वाले किसी अर्थ के उपपादक हेतु का कथन होता है । यह हेतु उस अनुपपद्यमान अर्थ का समर्थन करता है । लिंग का अर्थ हेतु है । काव्यलिंग अलंकार का हेतु रसमय होना चाहिए, तर्कमय नहीं । लक्षण से ही स्पष्ट होता है कि काव्यलिंग दो प्रकार का होता है—(१) वाक्यार्थ काव्यलिंग—जिसमें वाक्यार्थ ही हेतु होता है, और (२) पदार्थ काव्यलिंग—जिसमें पदार्थ हेतु होता है । उदाहरण—

'हे मूर्ख कन्दर्प ! मैंने तूझे जीत लिया है क्योंकि मेरे चित्त में त्रिलोचन शङ्कर जी विद्यमान हैं ।

यहाँ पर 'हे मूर्ख कन्दर्प ! मैंने तूझे जीत लिया है' यह वाक्य स्वतः अनुपपन्न है । समझ में नहीं आता कैसे जीत लिया है । इसका हेतु है 'क्योंकि मेरे चित्त में त्रिलोचन शङ्कर विद्यमान हैं ।' शङ्कर जी ने तो कन्दर्प को भस्म कर दिया था । अतः बाद का यह वाक्यार्थ पहले वाक्य का समर्थक है, पहली बात का समर्थन करने वाला रसमय हेतु है, अतः यहाँ काव्यलिंग अलंकार हैं ।

'हे प्रिये ! तम्हारे नेत्र के समान कान्ति वाले नील कमल जल में मग्न हो गये हैं । तम्हारे मुख की आभा का अनुकरण करने वाला चन्द्रमा बादलों के द्वारा ढक लिया गया है और जो तुम्हारी गति के समान गतिवाले राजहंस थे वे भी चले गए हैं । प्रतिकूल दैव तम्हारे सदृश वस्तुओं के साथ भी मेरे विनोद को सहन नहीं करता ।'

यहाँ चतुर्थ चरण के वाक्यार्थ का समर्थन पहले तीन चरणों के द्वारा किया गया है । अतः पहले तीन चरण चौथे चरण के हेतु हैं । यहाँ काव्यलिंग अलंकार हुआ ।

---

१ 'हेतोर्वाक्यपदार्थत्वे काव्यलिंगं निगद्यते ।' सा० द०
जहाँ वाक्यार्थ अथवा पदार्थ किसी का हेत हो वह काव्यलिंग अलंकार होता है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'हे नृप। युद्धभूमि में तुम्हारे अश्वों से उड़ाए हुए धूलि-समूह से कीचड़-युक्त गङ्गा को बहुत, भार के भय से, महादेव जी सिर पर धारण नहीं करते।'

यहाँ पूर्वार्द्ध, जो एक समस्त पद है, उत्तरार्ध का हेतु है। अतः यहाँ पदार्थ काव्यलिंग है।

संसृष्टि अलंकार

ल०—'सेष्टा संसृष्टिरेतेषां भेदेन यदिह स्थितिः ॥'

उ०—'लिम्पतीव तमोऽङ्गानि वर्षतीवाञ्जनं नभः।
असत्पुरुषसेवेव दृष्टिर्विफलतां गता ॥'

व्याख्या—इन पूर्वोक्त अलंकारों की निरपेक्षभाव से (एक दूसरे की अपेक्षा बिना) एकत्र स्थिति को संसृष्टि कहा जाता है। एतेषाम् में बहुवचन अविवक्षित है। इसमें दो या अधिक शब्दालंकार या अर्थालंकार या दोनों ही परस्पर कोई संबंध न रखते हुए एक पद्य में या वाक्य में रहते हैं। संसृष्टि 'तिलतण्डुलन्याय' से होती है। जैसे तिल और कच्चे चावल एक में मिला दिये जाने पर भी साफ-साफ अलग-अलग दिखाई देते हैं, उसी प्रकार 'संसृष्टि' में अलंकारों का परस्पर भेद स्पष्ट प्रतीत होता है। उदाहरण—

'ऐसा प्रतीत होता है कि अन्धकार अंगों में लेप-सा कर रहा है, आकाश कज्जल की वर्षा कर रहा है और इसलिए दृष्टि असत्पुरुष की सेवा के समान विफल हो गई है।'

यहाँ पूर्वार्ध में दो उत्प्रेक्षा अलंकार हैं और उत्तरार्ध में उपमा अलंकार है और ये परस्पर निरपेक्ष हैं, स्वतन्त्र हैं। अतः यहाँ दो अर्थालंकारों की संसृष्टि हुई।

---

१ 'मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते।' सा० द०

पूर्व प्रतिप्रादित अनुप्रास उपमा आदि अलंकार परस्पर निरपेक्ष होकर स्थित हों तो संसृष्टि अलंकार होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संकरः

ल०—'अविश्रान्तिजुषामात्मन्यङ्गाङ्गित्वं तु संकरः।
एकस्य च ग्रहे न्यायदोषाभावादनिश्चयः ॥
स्फुटमेकत्र विषये शब्दार्थालंकृतिद्वयम्।
व्यवस्थितं च तेनासौ त्रिरूपः परिकीर्तितः॥'

उ०—'अनुरागवती संध्या दिवसस्तत्पुरःसरः।
अहो दैवगतिश्चित्रा तथापि न समागमः॥'
'मुखचन्द्रं पश्यामि'।
'यथा गभीरो यथा रत्ननिर्भरो यथा च निर्मलच्छायः।
तथा किं विधिना एष सरसपानीयो जलनिधिर्न कृतः॥'
'स्पष्टोल्लसत्किरणकेसरसूर्यविम्बविस्तीर्णकर्णिकमथो दिवसारविन्दम्।
श्लिष्टाष्टदिग्दलकलापमुखावतारबद्धान्धकारमधुपावलि संचुकोच॥'

व्याख्या—'क्षीरनीरन्यायेन'—जैसे दूध और पानी परस्पर मिले हुए होते हैं, उसी प्रकार मिले हुए अलंकारों को संकर कहते हैं। संकर तीन प्रकार का होता है—

(१) अङ्गाङ्गिभावसंकर, (२) संदेह संकर (३) और एकाश्रयानुप्रवेशसंकर। अङ्गाङ्गिभावसंकर—जब मिले हुए अलंकारों की अपने स्वरूपमात्र में विश्रान्ति न हो तब अङ्गाङ्गिभाव संकर होता है। संसृष्टि के समान यहाँ अलंकार परस्पर निरपेक्ष रूप में स्थित नहीं होते। वे स्वतन्त्र रूप से न रहकर परस्पर अनुग्राह्यानुग्राहक (उपकार्योपकारक) भाव में संबद्ध हो जाते हैं। अर्थात् वे अन्योन्याश्रित होकर एक दूसरे के उपकारक बन जाते हैं। जैसे—

'संध्या तो अनुरागवती (रक्तिमा से युक्त एवं प्रेम से युक्त) है और दिन उसका पुरःसर (संमुख एवं अग्रगामी) है किन्तु दैव की गति भी कितनी विचित्र है कि फिर भी उनका समागम (मिलन या स्त्री पुरुष का संगम) नहीं होता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहाँ श्लिष्ट विशेषणों की सहायता से दिन और संध्या के वृत्तान्त से नायक-नायिका के अर्थ की प्रतीति हो रही है अतः यहाँ समासोक्ति अलंकार है। फिर नायिका के अनुरागवती होते हुए और नायक के उसके अग्रगामी अर्थात् आज्ञाकारी होते हुए भी उनका जो समागम नहीं हो रहा है यह विशेषोक्ति अलंकार है। ये दोनों एक दूसरे की अपेक्षा कर रहे हैं। यहाँ समासोक्ति, विशेषोक्ति का अंग हैं। अतः यहाँ अङ्गाङ्गिभाव संकर हुआ।

संदेहसंकर—जहाँ किसी एक अलंकार के स्वीकार करने में न तो साधक प्रमाण हो और न बाधक प्रमाण हो तब संदेहसंकर होता है। जैसे 'मुखचन्द्र को देखता हूँ'—क्या यहाँ 'मुखं चन्द्र इव' (मुख चन्द्रमा के समान है) इस प्रकार का अर्थ होने से उपमा है अथवा 'मुखं चन्द्रः एव' (मुख चन्द्र ही है) इस प्रकार का अर्थ होने से रूपक है ? इस प्रकार यहाँ संदेहसंकर है।

'विधि ने इस समुद्र को जैसा गम्भीर, जैसा रत्नपूर्ण और जैसा स्वच्छ कान्तिवाला बनाया, मालूम नहीं वैसा स्वादिष्ट जल वाला क्यों नहीं बनाया ?'

क्या यहाँ समुद्र वर्णनीय (प्रस्तुत) है और गंभीर आदि विशेषणों की सहायता से किसी अप्रस्तुत पुरुष की प्रतीति हो रही है जिससे यह समासोक्ति अलंकार होगा। अथवा यहाँ अप्रस्तुत समुद्र के वर्णन द्वारा किसी प्रस्तुत (वर्णनीय) पुरुष की प्रतीति हो रही है जिससे यह अप्रस्तुतप्रशंसा अलंकार होगा। इस संदेह का यहाँ निवारण नहीं हो रहा है, अतः यह संदेह संकर हुआ।

एकाश्रयानुप्रवेशसंकर—जहाँ एक ही पद में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों स्पष्ट रूप से रहते हैं उसे एकाश्रयानुप्रवेशसंकर कहते हैं। जैसे रत्नाकरकविकृत हरविजय महाकाव्य के १९वें सर्ग के इस सन्ध्याकाल के वर्णन को देखिए 'स्पष्ट रूप से निकलती हुई किरणरूपी केसर से युक्त, सूर्य

---

१ 'अङ्गाङ्गित्वेऽलंकृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ।
संदिग्धत्वे च भवति संकरस्त्रिविधः पुनः ॥'

संकर तीन प्रकार का होता है—एक तो जहाँ कई अलंकारों में अङ्गाङ्गिभाव हो, दूसरे जहाँ एक ही आश्रय में अनेक अलंकारों की स्थिति हो, तीसरे जहाँ अनेक अलंकारों का सन्देह होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बिम्ब रूप विस्तीर्ण बीज कोषवाला एवं परस्पर सम्बद्ध अष्टदिशारूप दलकलाप से युक्त, रात्रि के प्रारम्भ में फैले हुए अन्धकाररूप भ्रमरपङ्क्ति वाला यह दिवस रूपी अरविन्द वन्द हो गया ।'

यहाँ 'किरणकेसर' 'सूर्यबिम्बविस्तीर्णकर्णिक' और 'दिग्दलकलाप' इन तीनों पदों में रूपक और अनुप्रास क्रमशः अर्थालंकार और शब्दालंकार हैं। अतः यह हुआ एकाश्रयानुप्रवेश संकर ।

इस प्रकार तीनों तरह का संकर समाप्त हुआ ।

कतिपय अलंकारों में भेद

अलंकारों की व्याख्या करने के वाद कतिपय अलंकारों का अन्तर यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। जो पाठक अलंकारों के लक्षण और उदाहरण को अच्छी तरह समझ सके हैं, उनके लिये अलंकारों का अन्तर भी स्पष्ट हो गया होगा। फिर भी यहाँ इस विषय में कुछ मुख्य बातें वताई जायेंगी ।

उपमा और अनन्वय—उपमा में उपमान और उपमेय दोनों पृथक् पृथक् होते हैं। अनन्वय में उपमान और उपमेय एक ही वस्तु होती है। उपमा का सौन्दर्य तो है साम्य की प्रतीति में और अनन्वय का सौन्दर्य इस बात के प्रतिपादन में है कि वर्णनीय वस्तु का उपमान वनने योग्य कोई दूसरी वस्तु है ही नहीं ।

उपमा और उत्प्रेक्षा—(१) मन्ये, शंके, ध्रुवम्, प्रायः, नूनम्, ऊहे तर्कयामि, जाने, सम्भावयामि, उत्प्रेक्षे ये शब्द उत्प्रेक्षावाचक हैं। इनका प्रयोग उपमा में नहीं होता। इसलिये जहाँ इन शब्दों का प्रयोग हो वहाँ उत्प्रेक्षा ही होगी, उपमा नहीं ।

(२) 'इव' शब्द तो उपमा और उत्प्रेक्षा इन दोनों का वाचक है। अतः 'इव' के साथ कठिनता अधिक है । अप्पय दीक्षित का कहना है कि जव उपमा के पहले कोई विशेषण या विशेषण-खण्ड हो तब संभावना का अर्थ निकलेगा जिसके परिमाणस्वरूप वहाँ उत्प्रेक्षा होगी। जैसे—'मुखम-परश्च चन्द्र इव' में उत्प्रेक्षा है; क्योंकि उपमान (चन्द्र) का अपर विशेषण है।

...SAN JNANAMANDIR
LIBRARY
...Jangamwadi Math, Varanasi
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(३) महाभाष्यकार पतञ्जलि ने कहा है कि उपमान सर्वदा सिद्ध होता है और क्रिया साध्य होती है। इसलिये जब भी 'इव' का प्रयोग क्रिया के साथ होगा, तो यह संभावना के अर्थ में होगा और वहाँ उत्प्रेक्षा होगी जैसे 'लिम्पतीव तमोंऽगानि, वर्षतीवाञ्जनं नभः।'

(४) जो स्थल उपर्युक्त नियमों के अन्तर्गत नहीं आते वहाँ हमें इस बात पर ध्यान रखना होगा कि यदि उपमान लोकसिद्ध है तो वहाँ उपमा होगी और यदि उपमान काल्पनिक है तो वहाँ उत्प्रेक्षा होगी। चक्रवर्ती भट्टाचार्य ने कहा है—

यदायमुपमानांशो लोकतः सिद्धिमृच्छति। तदोपमैव येनेवशब्दः साधर्म्यवाचकः। यदा पुनरयं लोकादसिद्ध कविकल्पितः। तदोत्प्रेक्षैव येनेवशब्दः संभावनापरः॥ 'वास्तविक (लोकसिद्ध) उपमान के होने पर उपमा और काल्पनिक (लोकासिद्ध) उपमान होने पर उत्प्रेक्षा होगी' यह नियम 'इव' शब्द के प्रयोग में ही लागू होता है। 'मुखं चन्द्रं मन्ये' में तो लोकसिद्ध उपमान है परन्तु फिर भी यहाँ उत्प्रेक्षा है क्योंकि वह नियम 'इव' शब्द तक ही सीमित है। यहाँ तो 'मन्ये' के प्रयोग में स्पष्टतः उत्प्रेक्षा है।

उपमा और रूपक—उपमा में केवल सादृश्य दिखाया जाता है और रूपक में एकरूपता (अभेद) कर दी जाती है।

रूपक और समासोक्ति—(१) रूपक में प्रकृत विशेष्य (उपमेय) के ऊपर अपकृत के स्वरूप का आरोप होता है जबकि समासोक्ति में प्रकृत के व्यवहार पर अप्रकृत के व्यवहार का आरोप होता है।

(२) रूपक में उपमान शब्द से उपात्त होता है। समासोक्ति में श्लिष्ट शब्दों आदि की सहायता से अप्रकृत की प्रतीति होती है।

समासोक्ति और अप्रस्तुतप्रशंसा-समानता—इन दोनों में एक वस्तु के वृत्तान्त से अन्य वस्तु के वृत्तान्त की प्रतीति (आक्षेप) होती है।

अन्तर—समासोक्ति में प्राकरणिक के वृत्तान्त से अप्राकरणिक के वृत्तान्त की प्रतीति होती है और अप्रस्तुतप्रशंसा में अप्राकरणिक के वृत्तान्त से प्राकरणिक के वृत्तान्त की प्रतीति होती है। दूसरे शब्दों में समासोक्ति में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वाच्यार्थ प्रस्तुत (प्राकरणिक) होता है और यह अप्रस्तुत अर्थ की प्रतीति कराता है (अतः अप्रस्तुत प्रतीयमानार्थ हुआ)। अप्रस्तुतप्रशंसा में वाच्यार्थ अप्रस्तुत होता है और इस अप्रस्तुत वाच्यार्थ से प्रस्तुत व्यङ्ग्यार्थ की प्रतीति होती है।

इस प्रकार हम देखते है कि समासोक्ति और अप्रस्तुतप्रशंसा ठीक एक दूसरे के विपरीत हैं और किसी पद्य में समासोक्ति है या अप्रस्तुतप्रशंसा इस बात पर निर्भर करता है कि आपकी समझ में प्रस्तुत क्या है और अप्रस्तुत क्या है।

रूपक और अतिशयोक्ति—रूपक में उपमेय तथा उपमान तुल्य वल के होते हैं। मुख ही चन्द्रमा होता है। परन्तु मुख का चन्द्रमा के साथ अभेद होने पर भी स्थिति दोनों की बनी रहती है। अतिशयोक्ति में उपमान इतना प्रधान बन जाता है कि वह उपमेय को निगल जाता है और स्वयं ही उपमेय का भी कार्य करता है। अतिशयोक्ति में उपमेय का शब्द से ग्रहण नहीं होता।

'मुख ही चन्द्रमा है' रूपक में दोनों की स्थिति है परन्तु यह चन्द्रमा है' इस अतिशयोक्ति में केवल उपमान की स्थिति है।

प्रतिवस्तूपमा और उपमा में समानता—दोनों ही सादृश्य पर आधृत हैं तथा दोनों में समानता स्थापित की जाती है।

अन्तर—(१) उपमा में सामान्यतः एक ही वाक्य होता है, प्रतिवस्तूपमा में सर्वदा दो वाक्य होने चाहिये, (२) वाक्यार्थोपमा में दो वाक्य होते हैं और वे दोनों वाक्य एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं, परन्तु प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्य स्वतंत्र रहते हैं। (३) उपमा में साधर्म्य उपमावाचक के द्वारा प्रकट किया जाता है परन्तु प्रतिवस्तूपमा में साम्य गम्य होता है, वहाँ उपमा-वाचक का प्रयोग नहीं होता, (४) उपमा में साधारण धर्म का कथन एक बार होता है, प्रतिवस्तूपमा में दो वार भिन्न-भिन्न शब्दों से होता है, (५) उपमा में पदार्थों में साम्य होता है, प्रतिवस्तूमा में वाक्यार्थों में।

वस्तुप्रतिवस्तुभाव और बिम्बप्रतिबिम्बभाव 'प्रतापरुद्र—यशोभूषण' में इन पारिभाषिक पदों का लक्षण इस प्रकार किया गया है—'एकस्यार्थस्य शब्दद्वयेनाभिधानं वस्तुप्रतिवस्तुभावः। द्वयोरर्थयोर्द्विरुपादानं बिम्बप्रतिबिम्ब-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाव:' । एक ही वस्तु (पदार्थ) का भिन्न-भिन्न शब्दों द्वारा दो बार कथन वस्तुप्रतिवस्तुभाव कहलाता है । दो वस्तुओं के दो बार कथन को बिम्बप्रतिबिम्ब भाव कहते हैं । इसमें वे दोनों पदार्थ समान होते हैं, एक रूप नहीं । प्रतिवस्तूपमा अलंकार वस्तुप्रतिवस्तुभाव पर आधृत है तथा दृष्टान्त और निदर्शना भी बिम्बप्रतिबिम्बभाव पर आधृत है ।

प्रतिवस्तूपमा और निदर्शना

समानता—दोनों ही सादृश्य पर आधृत हैं और दोनों में ही सामान्यतः दो वाक्य होते हैं ।

भेद—(१) प्रतिवस्तूपमा में दो वाक्यों का होना अत्यावश्यक है, निदर्शना एक वाक्य में भी हो सकती है ।

(२) प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्य अर्थ की दृष्टि से स्वतंत्र होते हैं और अपने में पूर्ण होते हैं । निदर्शना में दोनों वाक्य अर्थ की दृष्टि से अपने में पूर्ण एवं स्वतंत्र नहीं होते । जब तक उनका उपमानोपमेय भाव में पर्यवसान न किया जाय, तब तक वे बेतुके से लगते हैं और उपमा में पर्यवसान होने पर ही वे उपपन्न होते हैं । (३) प्रतिवस्तूपमा 'वस्तुप्रतिवस्तुभाव' पर आधृत है और निदर्शना 'बिम्बप्रतिबिम्बभाव' पर ।

प्रतिवस्तूपमा और दृष्टान्त

समानता—दोनों में दो स्वतन्त्र वाक्य होते हैं जिनमें साम्य होता है ।

अन्तर—(१)प्रतिवस्तूपमा 'वस्तुप्रतिवस्तुभाव' पर आधृत है और दृष्टान्त 'बिम्बप्रतिबिम्बभाव' पर आधृत है—प्रतिवस्तूपमा में उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य में एक ही अभिन्न साधारणधर्म पुनरुक्ति के भय से भिन्न शब्दों द्वारा प्रगट किया जाता हैं जब कि दृष्टान्त में दो भिन्न-भिन्न साधारणधर्म उपमेय वाक्य और उपमान वाक्य में दो भिन्न शब्दों के द्वारा प्रगट किये जाते हैं । इन दो वाक्यों का साधारणधर्म प्रतिवस्तूपमा की तरह यहाँ अभिन्न नहीं परन्तु समान होता है, (२) प्रतिवस्तूपमा में यह अभिन्न साधारणधर्म ही दो भिन्न-भिन्न शब्दों के द्वारा कहा जाने पर चमत्कारजनक होता है और इसी में इस अलंकार की अलंकारता है । दृष्टान्त में केवल साधारणधर्मों के बिम्ब-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिविम्बभाव में ही चमत्कार नहीं, अपितु उपमेय और उपमान तथा उनसे सम्बद्ध पदार्थों के विम्बप्रतिविम्बभाव में भी चमत्कार होता है।

वास्तव में कभी-कभी यह वतलाना कठिन हो जाता है कि अमुक स्थल पर प्रतिवस्तूपमा अलंकार है अथवा दृष्टान्त; क्योंकि दोनों ही में एक साधारणधर्म अथवा दो साधारणधर्म भिन्न-भिन्न शब्दों से ही निर्दिष्ट होते हैं और यह पता लगाना कठिन हो जाता है कि एक ही धर्म भिन्न-भिन्न शब्दों से निर्दिष्ट हुआ है अथवा ये दो भिन्न-भिन्न धर्म हैं जो दो वार कहे गए हैं। यह हमारे ऊपर निर्भर होता है कि हम उसे एक धर्म माने अथवा दो धर्म। इसी कारण जगन्नाथ ने अपने रसगङ्गाधर में इन्हें एक ही अलंकार के दो भेद माने हैं।

दीपक (प्रथम) और तुल्ययोगिता

'प्रकृताप्रकृतयोरपि साधारणधर्मस्य सकृदुपादाने प्रथमं दीपकम् प्रकृतानामेव अप्रकृतानामेव वा साधारणधर्मस्य सकृदुपादाने तुल्ययोगितेत्यनयोर्भेदः ॥'

—वामनाचार्यः

समानता—दोनों में ही एक साधारणधर्म का सम्वन्ध अनेक पदार्थों के साथ होता है और दोनों में ही इस साधारणधर्म का कथन केवल एक बार होता है।

अन्तर—दीपकालंकार में साधारणधर्म का सम्बन्ध प्रकृत और अप्रकृत दोनों के साथ होता है परन्तु तुल्ययोगिता में साधारणधर्म का सम्वन्ध या तो प्रकृत पदार्थों के साथ होगा या अप्रकृत पदार्थों के ही साथ; दोनों के साथ नहीं।

विभावना और विशेषोक्ति

समानता—दोनों ही में कारण और कार्य के नियम का विरोध होता है।

अन्तर—जहाँ कारण के अभाव में भी कार्य हो जाय वह तो हुई विभावना और जहाँ कारण के विद्यमान रहने पर भी कार्य न हो, वह हुई विशेषोक्ति। इस प्रकार ये दोनों एक दूसरे के विल्कुल विपरीत (प्रतिकूल) अलंकार हैं।

अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त

समानता—दोनों में ही दो-दो वाक्य होते हैं और दोनों में समर्थ्य—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समर्थकभाव सम्बन्ध होता है। अर्थात् एक वाक्य दूसरे वाक्य का समर्थन करता है।

अन्तर—(१) दृष्टान्त अलंकार में सामान्य का समर्थन सामान्य से या विशेष का समर्थन विशेष से होता है। अर्थान्तरन्यास में सामान्य का समर्थन विशेष से या विशेष का समर्थन सामान्य से किया जाता है। दूसरे शब्दों में, दृष्टान्त में दोनों वाक्य या तो सामान्य होंगे या विशेष होंगे जब कि अर्थान्तरन्यास में एक सामान्य होता है और एक विशेष, (२) अर्थान्तरन्यास में सामान्यविशेषभाव होता है परन्तु दृष्टान्त में नहीं, (३) दृष्टान्त अलंकार में साम्य या बिम्बप्रति-विम्बभाव मुख्य वस्तु होती है और समर्थ्यसमर्थकभाव तो बाद में आता है परन्तु अर्थान्तरन्यास में समर्थ्यसमर्थकभाव ही मुख्य वस्तु होती है जिससे अलंकार प्रारम्भ होता है।

अर्थान्तरन्यास और प्रतिवस्तूपमा

समानता—दोनों में दो ऐसे वाक्य होते हैं जो एक दूसरे को अच्छी तरह समझाने में सहायक होते हैं। इस प्रकार दोनों में समर्थ्यसमर्थकभाव होता है।

अन्तर—(१) प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्य या तो सामान्य होंगे या विशेष होंगे परन्तु अर्थान्तरन्यास में एक वाक्य सामान्य होगा और एक विशेष (२) प्रतिवस्तूपमा में दोनों वाक्यों में उपमानोपमेयभाव सम्बन्ध विवक्षित होता है जब कि अर्थान्तरन्यास में समर्थ्यसमर्थकभाव विवक्षित होता है ('प्रतिवस्तूपमायामुपमानोपमेयभावो विवक्षितः अत्र तु समर्थ्यसमर्थकत्वं विवक्षितमिति ततोऽस्य भेदः' इति सारबोधिनी)। दूसरे शब्दों में—प्रतिवस्तूपमा में साम्य ही मुख्य बात होती है और यह वस्तुप्रतिवस्तुभाव पर आधृत होता है, समर्थ्य-समर्थकभाव तो गम्य होता है और वह बाद की वस्तु है। अर्थान्तरन्यास में समर्थ्यसमर्थकभाव ही मुख्य वस्तु है जिसके ऊपर यह अलंकार आधृत है।

उदात्त और स्वभावोक्ति

समानता—प्रथम प्रकार की स्वभावोक्ति और उदात्त दोनों में वस्तुओं का वर्णन होता है।

अन्तर—स्वभावोक्ति में किसी वस्तु का स्वाभाविक वर्णन होता है, उसका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वैसा वर्णन होता है जैसी वह वास्तव में है । उदात्त में किसी समृद्धिशाली वस्तु की समृद्धि का काल्पनिक असम्भव वर्णन होता है ।

तद्‌गुण और अतद्‌गुण

ये दोनों एक दूसरे के विपरीत अलंकार हैं । जब एक न्यून गुणवाली वस्तु उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु के रूप को धारण कर ले वह तद्‌गुण अलंकार होता है और जब संयोग में आने पर भी न्यून गुणवाली वस्तु उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु के रूप को ग्रहण न करे तो अतद्‌गुण अलंकार होता है ।

अतद्‌गुण और विशेषोक्ति

समानता—दोनों में ही पर्याप्त कारण होने पर भी कार्य का न होना प्रतिपादित किया जाता है ।

अन्तर—विशेषोक्ति का क्षेत्र विस्तृत होता है और उन सब स्थलों पर जहाँ पर्याप्त कारण होने पर कार्य न हो, विशेषोक्ति अलंकार होता है । अतद्-गुण का क्षेत्र सीमित होता है । अतद्‌गुण अलंकार वहाँ होता है जहाँ एक न्यून गुणवाली वस्तु उत्कृष्ट गुणवाली वस्तु के साथ आने पर भी उसके रूप (रंगादि को) ग्रहण नहीं करती ।

शब्दश्लेष और अर्थश्लेष

समानता—इन दोनों में यह समानता है कि दोनों में ही एक शब्द से दो अर्थ प्रस्तुत किये जाते हैं ।

अन्तर—(१) अर्थश्लेष में शब्द स्वभाव से एकार्थक होते हैं जबकि शब्दश्लेष में सर्वदा द्व्यर्थक होते हैं (२) शब्दश्लेष में शब्द का परिवर्तन करके उसके स्थान पर उसका समानार्थक (पर्याय) रख देने पर श्लेष अलंकार ही नहीं रहता अर्थात् शब्दश्लेष शब्दपरिवृत्त्यसह है । अर्थश्लेष में शब्द का परिवर्तन करके उसके स्थान पर दूसरा समानार्थक शब्द रख देने पर श्लेष ज्यों का त्यों बना रहता है, उसको कोई हानि नहीं होती । इस प्रकार अर्थ-श्लेष में शब्द परिवृत्तिसह होते हैं । शब्दश्लेष में दो भिन्न शब्दों का 'जतुकाष्ठ-न्याय' से श्लेष होता है । जिस प्रकार जतु (लाख) लकड़ी से भिन्न होता हुआ भी उसपर चिपका रहता है, इसी प्रकार शब्दश्लेष में दूसरा शब्द पहले शब्द से अत्यन्त भिन्न होने पर भी उस शब्द पर चिपका सा रहता है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्थ श्लेष में शब्द दोनों पक्षों में एक ही रहता है, किन्तु अर्थ दो होते हैं। जैसे एकवृन्त (गुच्छे) में दो फल लगे हों; इसी प्रकार एक शब्द में दो अर्थ मिले हुए दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार अर्थश्लेष 'एकवृन्तगतफलद्वयन्यायेन' होता है। शब्दश्लेष के उदाहरण में 'विधौ' पद दो अर्थों का प्रतिपादक है परन्तु यहाँ शब्द भी दो ही हैं—एक है विधि का सप्तमी में एकवचन और दूसरा है विधु का सप्तमी में एकवचन। दोनों शब्द एक में मिल गये हैं। इस प्रकार यहाँ दो शब्दों का मेल हुआ परन्तु अर्थश्लेष में दो अर्थों का मेल होता है।

अर्थान्तरन्यास और काव्यलिंग

समानता—वाक्यार्थ काव्यलिंग और अर्थान्तरन्यास एक दूसरे से इस बात में समान हैं कि दोनों ही समर्थ्य-समर्थक-भाव पर आधृत हैं, दोनों में एक वात का दूसरी वात से समर्थन किया जाता है।

अन्तर—(१) काव्यलिंग कार्यकारणभाव पर आधृत है और अर्थान्तरन्यास में सामान्यविशेपभाव होता है। (२) काव्यलिंग में दोनों वाक्य एक दूसरे पर आश्रित होते हैं और एक का अर्थ दूसरे के विना यथार्थ रूप में समझ में नहीं आ सकता। दूसरी ओर अर्थान्तरन्यास के दोनों वाक्य स्वतन्त्र होते हैं और प्रत्येक वाक्य अर्थ की दृष्टि से अपने में पूर्ण होता है। (३) काव्यलिंग में निष्पादक हेतु होता है जब कि अर्थान्तरन्यास में समर्थक हेतु होता है।

संसृष्टि और संकर

समानता—ये दोनों ही वहाँ होते हैं जहाँ दो या दो से अधिक अलंकार आपस में मिले होते हैं।

भेद—(१) जहाँ दो या दो से अधिक अलंकार निरपेक्ष रूप से स्थित होते हैं वहाँ संसृष्टि अलंकार होता है। इसके विपरीत जहाँ दो या दो से अधिक अलंकार सापेक्ष रूप से स्थित रहें वहाँ संकर अलंकार होता है जो तीन तरह का होता है—एक तो जहाँ उन अलंकारों में अंगांगिभाव हो, दूसरे जहाँ एक ही स्थल में दो या दो से अधिक अलंकारों का संदेह हो और तीसरे जहाँ एक ही आश्रय में दो या दो से अधिक अलंकारों की स्थिति हो (२) संसृष्टि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में ये अलंकार 'तिलतण्डुलन्याय' से मिले होते हैं, परन्तु संकर में 'नीरक्षीरन्याय' से मिले होते हैं ।

छेकानुप्रास और वृत्त्यनुप्रास—छेकानुप्रास में एक से अधिक व्यञ्जनों की एक ही बार आवृत्ति होती है परन्तु वृत्त्यनुप्रास में एक या एक से अधिक व्यञ्जनों की आवृत्ति कई बार होती है ।

छेकानुप्रास और लाटानुप्रास—छेकानुप्रास में अवाचक (निरर्थक) व्यञ्जनों की आवृत्ति होती है । इसके विपरीत लाटानुप्रास में सार्थक पदों की आवृत्ति होती है । छेकानुप्रास वर्णानुप्रास है और लाटानुप्रास पदानुप्रास है ।

वृत्त्यनुप्रास और यमक—वृत्त्यनुप्रास में एक या अनेक व्यञ्जनों की अनेक बार आवृत्ति होती है । वृत्त्यनुप्रास भी वर्णानुप्रास है । दूसरी ओर यमक में स्वर और व्यञ्जन दोनों के समुदाय की उसी क्रम में आवृत्ति होनी आवश्यक है । इसके अतिरिक्त वृत्त्यनुप्रास में आवृत्त व्यञ्जन सर्वदा निरर्थक होते हैं जब कि यमक में कहीं दोनों पद सार्थक होते हैं, कहीं दोनों निरर्थक और कहीं एक सार्थक होता है और एक निरर्थक । वृत्त्यनुप्रास में आवृत्ति अनेक बार होनी चाहिए किन्तु यमक में सामान्यतः पदों की एक ही बार आवृत्ति होती है ।

लाटानुप्रास और यमक—लाटानुप्रास में समानार्थक पदों की आवृत्ति होती है; केवल तात्पर्य में भेद रहता है । इसके विपरीत

नोट—जब दो अलंकारों में भेद पूछा जाता है तब पहले उन दोनों अलंकारों के लक्षण बतलाने चाहिए और उन दोनों के लक्षणों से उनका भेद बताकर फिर उन दोनों के उदाहरण देने चाहिए और बताना चाहिए कि उनके उदाहरण किस प्रकार उनके भेद को बतला रहे हैं । एक अलंकार का उदाहरण दूसरे अलंकार का उदाहरण क्यों नहीं हो सकता इसके कारण को बताना चाहिए । फिर उनमें संक्षेप में उपर्युक्त पद्धति से भेद दिखलाना चाहिए ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यमक में यदि दोनों पद अर्थवान् हों तो वे अवश्य ही भिन्न अर्थ वाले होंगे। समानार्थक पदों की आवृत्ति में यमक कदापि नहीं हो सकता। दूसरी बात यह है कि लाटानुप्रास में आवृत्त पद सर्वदा सार्थक होंगे जब कि यमक में कभी-कभी दोनों पद सार्थक होते हैं, कभी दोनों पद निरर्थक और कहीं एक सार्थक और एक निरर्थक।

———

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 4107

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ह मा रे अ न्य प्र का श न

१. ऋग् वेदभाष्यभूमिका [सायणाचार्य]
डा० वीरेन्द्र कुमार वर्मा ३.५०

२. शिशुपालवध (प्रथम सर्ग)
डा० वीरेन्द्र कुमार वर्मा १.५०

३. कादम्बरी शुकनासोपदेश
डा० वीरेन्द्र कुमार वर्मा १.५०

४. किरातार्जुनीयम् (सर्ग १३)
डा० वीरेन्द्र कुमार वर्मा २.००

५ न्यु वेदिक सलेक्शन
डा० कान्तानाथ तैलंग एवं
डा० ब्रजबिहारी चौबे १२.५०

६ इन्ट्रोडक्शन टु पाली
एनामदर्शी बरुआ ५.००

७. प्राकृत प्रवेशिका
डा० कोमल चन्द्र जैन ४.००

८. पातंजल योगसूत्र (भोजवृत्ति हिन्दी अनुवाद सहित)
डा० अमलधारी सिंह ७.००

९. पातंजल योग दर्शन (व्यास भाष्य-तत्त्व-वैशारदी-
योगवार्तिक व्याख्या सहित)
सं०—श्रीनारायण मिश्रा १६.००

१०. सांख्यतत्त्व कौमुदी
बालो राम उदासीन ५.००

भारती विद्या प्रकाशन

पो० बा० १०८, कचौड़ीगली

वा रा ण सी—१

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri